

## ईरान में पांडुलिपि लेखन एवं अलंकरण

ईरानी कलाओं के स्वर्णिम इतिहास में पुस्तक बनाने एवं पुस्तक अलंकरण की कला का विशिष्ट स्थान है। इस सुंदर एवं सूक्ष्म कला से ईरानी सभ्यता में शिक्षा की महत्ता भी प्रकाशित होती है। इसी के साथ सुंदर एवं आकर्षक लेखन तथा अलंकृत लिपियों के प्रयोग का इतिहास भी सामने आता है।

ईरान में पुस्तक तैयार करने की प्रथा का इतिहास कई प्राचीन स्रोतों से प्राप्त होता है। ज़रतुश्टियों की पवित्र पुस्तक अवेस्ता, तारीख-ए-तवरी तथा कई अन्य ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार अलंकृत चर्मपत्र के हाशियों पर स्वर्णाक्षर लिखे जाते थे। इसकी हज़ारों प्रतिलिपियाँ इसी प्रकार बनाई गईं तथा बल्लू में गुश्तासब शाह को भेंट की गईं। इनमें से अनेक चर्मपत्र तथा कुछ भोजपत्र आदि पर लिखित थीं।

ऐतिहासिक स्रोतों से पता चलता है कि ईरान में इस्लाम पूर्वकालीन सासानी वंशकाल में अवेस्ता की हज़ारों प्रतिलिपियाँ चर्मपत्र तथा भोजपत्र पर अलंकृत सुलेख में तैयार होती थीं। इन पत्रों के हाशिये को स्वर्ण लेपन (सोने के पानी) से सजाया जाता था। उपरोक्त पत्रों के अतिरिक्त अनेक शिलालेख अलंकृत लिपि में लिखे गए। इस लेखन कार्य के लिए लौह, मिट्टी, सरकंडे अथवा पत्थर की कलम बनाई जाती थी। विभिन्न उत्खनन कार्यों में पुरातत्त्ववेत्ताओं को इस प्रकार के प्रमाण मिले हैं जिनसे पता चलता है कि ईरान में लेखन कार्य के लिए विभिन्न सामग्री का प्रयोग दीर्घकाल से हो रहा है। सिकंदर के आक्रमण के उपरांत तिब्ब (चिकित्सा पद्धति), दर्शन, कृषि विज्ञान तथा खगोलशास्त्र संबंधी विषयों की पुस्तकों का अनुवाद यूनानी तथा फ़ारसी भाषा में किया गया तथा उनकी प्रतिलिपियाँ तैयार की गईं। इन्हीं प्रतिलिपियों में से कुछ इस्फ़ाहान में उत्खनन स्थल से प्राप्त हुई हैं।

निसामवर्ग के उत्खनन से प्राप्त पारसी भाषा में शासकीय आदेश चर्मपत्र तथा मृत्पिंड पर लिखित हैं। संक्षेप में, इस्लाम पूर्व ईरान में विभिन्न विषयों पर लिखी गई पुस्तकों को कई प्रकार से तैयार किया जाता था ताकि देखने में भी सुंदर एवं आकर्षक हों तथा टिकाऊ भी हों। ईरानियों ने इस्लाम पूर्व कालीन अनेक पुस्तकों का वाद में अरबी भाषा में भी अनुवाद किया। यह अनुवाद कार्य पाँचवीं-छठी सदी हि. तक प्रचुरता में देखने को मिलता है। इस्लामोत्तर काल में फ़ारसी-दरी भाषा में उपलब्ध प्राचीनतम पुस्तकों में अबू मंसूर हर्वी कृत अल-अबिया-अन-हफ़ायकुल-अदविया जिसे प्रसिद्ध कवि असदी तूसी ने सन् 448 हि. में लिखा था उल्लेखनीय है। यह पुस्तक (पांडुलिपि) बियाना के संग्रहालय में दुर्लभ पुस्तकों के संग्रह का अमूल्य भाग है। इसी प्रकार कुछ अन्य

उल्लेखनीय पुस्तकों में मुहम्मद बिन उम्र रादवयानी की तर्जुमान-उल-बलागा (सन् 507 हि.) है जो तुर्की में हस्तलिखित हुई है।

मुगलों के विनाशकारी आक्रमणों ने ईरान एवं पड़ोसी राज्यों के बहुमूल्य पुस्तकालयों को सदा के लिए नष्ट कर दिया। इसलाम पूर्व तथा इसलामोत्तर काल के प्रारंभिक वर्षों का अमूल्य साहित्यिक कोष घोंड़ों के पाँव तले रौंद दिया गया। भवनों तथा प्रासादों का निर्माण तो पुनः संभव है लेकिन पुस्तकों को पुनर्जीवित करना असंभव है। मुगलों के बाद के बादशाहों के विवेकी तथा दूरदर्शी मंत्रियों ने बहुत नुकसान होने के उपरांत पुनः कलात्मक एवं साहित्यिक कार्यों की पुनरावृत्ति की। ख़ाजा रशीदुद्दीन फ़ज़लुल्लाह हमदानी, ख़ाजा नसीरुद्दीन तूसी, अता-उल-मुल्क तथा शम्सुद्दीन के संरक्षण में पुस्तकों को प्राचीन शैली में तैयार करने का कार्य प्रारंभ हुआ। उदाहरणार्थ, ख़ाजा रशीदुद्दीन फ़ज़लुल्लाह हमदानी की जामए-उत्तवारीख़ की चित्रकारी का कार्य विख्यात चित्रकार अहमद मूसा ने सात वर्षों के दीर्घ काल में सम्पन्न किया। यह पांडुलिपि रॉयल एशियाटिक सोसायटी संग्रहालय, लंदन में सुरक्षित है। इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं। सन् 750 हि. के उपरांत पुस्तकों को विभिन्न प्रकार से अलंकृत करने का कार्य आरंभ हुआ। तैमूरियों के काल में इस कार्य में अत्यधिक उन्नति हुई। तबरीज़, शीराज़ एवं हेरात, पुस्तकों में चित्रकारी एवं अलंकरण कार्य के लिए बहुत प्रसिद्ध हुए।

**ईरान में कागज़ निर्माण का संक्षिप्त इतिहास**—चीन का निर्मित माल सदैव ईरान की सीमाओं से निर्यात होता रहा। विशेषतः चीनी रेशम का व्यापार ईरान मार्ग से ही करते थे। रेशम बनाने का हुनर ईरानियों ने चीनियों से ही सीखा। इसी प्रकार कागज़ बनाने की कला भी चीनियों ने ईरानियों को सिखाई। प्राप्त ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि अरब हाकिम ज़य्याद बिन सालह (मृ. 135 हि.) ने कुछ चीनी क़ैदियों को समरकंद की जेल में रखा था। उन क़ैदियों ने समरकंदियों को कागज़ बनाने की विधि सिखाई। इस प्रकार कागज़ का प्रथम उत्पादन केंद्र समरकंद बना। यहाँ से कागज़ बनाने की कला का प्रसार अन्य शहरों में भी हुआ। इसका उत्पादन इतना अधिक होने लगा कि चीनी कागज़ के साथ-साथ ईरानी कागज़ का भी निर्यात होने लगा। ईरानी लेखकों ने ईरानी कागज़ के अलावा अन्य कागज़ पर लिखना बंद कर दिया। इससे स्वदेशी कागज़ उत्पादन को प्रोत्साहन मिला। इब्ने नदीम ने अपनी पुस्तक अलफ़हरिस्त में विभिन्न प्रकार के कागज़ों के नामों का विवरण दिया है इनमें मुख्यतः कागज़-ए-सुलेमानी (खलीफ़ा हारून रशीद के काल में खुरासान में नियुक्त हाकिम सुलेमान बिन राशिद) कागज़-ए-तलही (तलहा बिन ताहिर, द्वितीय ताहिरी शासक, सन् 207-213 हि.) कागज़-ए-नूही (नूह सामान, सामानी शासक) कागज़-ए-फ़रउनी (कागज़ जाफ़री) (जाफ़र बरमकी, खलीफ़ा बग़दाद का वज़ीर) कागज़-ए-ताहिरी (ताहिरी शासक ताहिर द्वितीय) आदि ईरानी कागज़ की मुख्य किस्में थीं। इसके अतिरिक्त अन्य कागज़ की किस्मों में समरकंदी, जीहानी, ख़ूनजी भी उल्लेखनीय हैं। सबसे अधिक प्रचलित समरकंदी कागज़ था। यह बहुत मुलायम, सुंदर, महीन एवं पायदार होता था। इसके कारण मिस्त्री कागज़ तथा भोजपत्र का बाज़ार में चलन ही समाप्त हो गया।

तैमूरी काल में कागज़ निर्माण कार्य में नाना प्रकार की नवीन पद्धतियों का प्रचलन आरंभ हुआ। इनका प्रथम उद्देश्य बढ़ती हुई माँग तथा कागज़ की गुणवत्ता में सुधार लाना था। द्वितीय, कागज़ निर्माण के सबसे बड़े उत्पादक देश चीन से प्रतिस्पर्धा थी। कई ईरानी शहरों में कागज़ उत्पादन केंद्र स्थापित होने के बावजूद कागज़ का आयात

हिंदुस्तान, तुर्की तथा लघु एशिया से होता रहा।

ईरानियों द्वारा अपनायी गई नवीन पद्धति में चाय, प्याज के छिलके, स्याही, अखरोट का छिलका, गावजवान पुष्प, ज़ाफ़रान, बैंगन तथा मेंहदी का प्रयोग कागज़ को रंगीन बनाने के लिए किया जाने लगा। सुंदर, अबरी कागज़ विशेषतः ईरानियों की खोज है। इसका प्रथम उत्पादक शहाबुद्दीन अब्दुल्लाह मर्वाज़िद उर्फ़ ब्यानी (सन् 865-922 हि.) था। सफ़वी काल के शासक शाह तहमासब के काल में अमीर मुहम्मद ताहिर मुल्लिद ने इसको अधिक रंगविरंगा एवं आकर्षक बनाकर इसकी कोटि में सुधार किया। सुंदर लेखन एवं आकर्षक चित्रण के लिए कागज़ पर माँड़ चढ़ाने की प्रक्रिया भी ईरानियों की देन है। अन्य सुधारों में कागज़ पर पिसे हुए काँच तथा बारीक पत्थर के चूर्ण का लेप भी शामिल है। इस कोटि के कागज़ का प्रयोग अधिकांश शाही फ़रमान आदि के लिए किया जाता था।

**जिल्दसाज़ी**—लिखित पन्नों को एकत्रित कर एक पांडुलिपि का रूप प्रदान करना भी एक कला है। पांडुलिपि को अंतिम रूप प्रदान करने में जो पड़ाव पार किए जाते हैं उनमें लेखन, पन्नों को सुसज्जित ढंग से तैयार करने, शीराज़ा बंदी करने तथा अंत में जिल्द बाँधने का कार्य सबसे महत्वपूर्ण होता था क्योंकि किसी पांडुलिपि को सुरक्षित रखने में उसकी जिल्द की भूमिका ही सबसे महत्वपूर्ण होती थी।

प्रारंभिक प्राचीन काल में चर्म अथवा भोजपत्रों को सुरक्षित रखने के लिए लकड़ी, लौह अथवा काँसे की पेटियाँ प्रयुक्त होती थीं। उत्तर प्राचीन काल में सोने तथा चाँदी की भी पेटियाँ बनाई जाने लगीं। पेटि की धातु अथवा सामग्री पुस्तक के महत्त्व पर निर्भर करती थी। उसके उपरांत धातु का स्थान रेशम, भेड़ या बकरी की कमाई हुई खाल ने ले लिया। क्योंकि लकड़ी या धातु के खराब हो जाने पर पुस्तक के पन्ने भी गल-सड़ जाते थे या जंग अथवा दीमक लगने से नष्ट हो जाते थे। परिणामस्वरूप पुस्तक के भार में भी कमी आई तथा उनके वहन करने में सुविधा होने लगी। इसके उपरांत जिल्दों को विभिन्न शैलियों से अलंकृत करने की प्रक्रिया शुरू हुई। जिल्द के कोनों को मोतियों से सजाने तथा उत्कीर्ण लेखन कार्य का सिलसिला शुरू हुआ। सासानियों के काल में चर्मपत्र की जिल्द के अतिरिक्त स्वर्णपत्र की जिल्द बनाने का चलन था।

इसलामी काल के प्रारंभिक दौर में साधारण चर्मपत्र से बनी जिल्द का प्रचलन था। रंग भी सीमित ही थे। प्रायः काला, हरा, कथई अथवा पीत वर्ण ही प्रयुक्त होता था। चौथी सदी हि. में जिल्द पर छोटे वेल-चूटों की चित्रकारी शुरू हुई। इसके उपरांत अलंकरण कार्य में वृद्धि होती गई। यहाँ तक कि सफ़वी दौर में जिल्द पर सुंदर चित्रकारी होने लगी। पेरिस, वियना तथा लंदन के संग्रहालयों में सुरक्षित इस काल की कुछ पांडुलिपियाँ हैं जिनसे इस कला की उत्कृष्टता का अनुमान लगाया जा सकता है।

विख्यात कलाविद् आर्नस्ट कोपल के मतानुसार कुस्तुनतूनिया की कला शैली वास्तव में सफ़वी काल की तबरेज़ शैली की नक़ल है।

इस शैली के प्रसिद्ध जिल्दसाज़ों में सुलतान बायसंकरा मिर्ज़ा एवं सुलतान याक़ूब के काल के उस्ताद किवामउद्दीन तबरेज़ी के नाम उल्लेखनीय हैं। उसने जिल्द पर उत्कीर्णन कार्य का श्रृंगणेश किया। ईशा तथा महमूद भी उसके समकालीन प्रसिद्ध जिल्दसाज़ थे। शाह तहमासब सफ़वी के दरबार का विख्यात जिल्दसाज़, मुहसिन

मुजल्लिद (जिल्दसाज़) तथा क़ासिम बेग तबरेज़ी (मृ. 1000 हि.) थे। आगामी दो शताब्दियों के मशहूर जिल्दसाज़ों में दोस्त मुहम्मद, शेख अब्दुल्ला इमामी संगी, अली बदख़्शी, मीर सईद फ़ुग़ानी आदि थे। रंगुनी जिल्द तैयार करने के लिए वहज़ाद, रिज़ा अब्बासी तथा यारी मुज़हब हरवी आदि प्रसिद्ध रहे हैं। क़ाजारी दौर में लुत्फ अली ख़ान सूरतगर, फ़तह उल्लाह शीराज़ी, मिर्ज़ा अली दूदी तथा अतीक़ी आदि नामवर जिल्दसाज़ों में गिने जाते हैं।

**सहाफ़त अर्थात् शीराज़ाबंदी**—पुस्तक पर जिल्द चढ़ाने से पूर्व पन्नों को एकत्रित करने की कला को शीराज़ाबंदी कहते हैं। पुस्तक बनाने के कार्य में जिल्दसाज़ी की कला का एक महत्वपूर्ण स्थान है। पांडुलिपि शीराज़ाबंदी में इस बात का ध्यान रखा जाता था कि यह टिकाऊ हो और दीर्घकाल तक इसके जोड़ न खुलें। प्राचीन काल में जिल्दसाज़ ही शीराज़ाबंदी का कार्य करता था तथा शीराज़ाबंदी करने वाला व्यक्ति पाठ तुलना एवं संपादन कार्य (Textual editing) भी सँभालता था। तैमूरी तथा सफ़वी काल में सहाफ़ी (शीराज़ाबंदी करने वाला) अपने मूल कार्यों के अतिरिक्त पुस्तक तैयार करने तथा जिल्दसाज़ी संबंधी अन्य कार्य भी करते थे। उपरोक्त काल में सहाफ़ी एक पेशा था। उनके व्यवसाय के नाम से बाज़ार अर्थात् बाज़ारे-सहाफ़ान भी विद्यमान थे। प्रत्येक शहर के सहाफ़ियों की सहाफ़त पद्धति भिन्न होती थी। विख्यात पुस्तक राहतुस्सुदूर का लेखक राबंदी स्वयं मशहूर सहाफ़ी था। सुलतान बायसंकरा के काल में तबरेज़ का मौलाना ज़ाति लारी एवं इशरती कलंदर, अस्तरावाद का रमज़ान नवाबी, इस्फ़ाहान का फ़तूही मशहूर सहाफ़ियों में से थे। 'सहाफ़वाशी' काल के प्रसिद्ध सहाफ़ियों में क़ासिम बेग तबरेज़ी उल्लेखनीय है। क़ाजारी काल में इस व्यवसाय के लोगों को बहुत सम्मानित किया गया। मुख्य सहाफ़ी का पद 'सहाफ़वाशी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सहाफ़ियों के औज़ार तथा सामान में विभिन्न प्रकार की गोंद, संरेश, काग़ज़, कैंची, फुटा, विभिन्न प्रकार के चर्मपत्र, सुआ, सूत, धुरी, सुंवा, रंग, गत्ता, सुनहरी वरक़, मलमल का कपड़ा आदि मुख्य हैं।

**वराक़ (वरक़ तैयार करने वाला)**—वास्तव में वराक़ का कार्य वरक़ (पृष्ठ) तैयार करना था। वह आवश्यकतानुसार पन्नों की कटाई करता था। इसलामी देशों के कुछ भागों में उसका व्यवसाय काग़ज़ी अर्थात् काग़ज़ बेचने वाला तथा कुछ में क़ातिब अथवा जिल्दसाज़ था। अधिकांश भागों में वे जिल्दसाज़ी अथवा प्रतिलिपि बनाने के लिए ही नियुक्त किये जाते थे। कुछ वराक़ अच्छे लेखक एवं अनुवादक भी रहे हैं। इब्ने नदीम जिसने महत्वपूर्ण पुस्तक अलफ़हरीस्त लिखी स्वयं वराक़ के पद पर कार्यरत था। इसी प्रकार इब्ने कुतलान बग़दादी की कृति तक्वीमुस्सहा का अनुवादक जिसने उपरोक्त पुस्तक का फ़ारसी में अनुवाद किया, अपने समय का विख्यात वराक़ था।

वराक़ का मुख्य कार्य उचित आकार के पन्नों को तैयार करना था। उनकी कुशलता इस बात पर निर्भर करती थी कि वह किस प्रकार काग़ज़ की कटाई करते हैं ताकि काग़ज़ बेकार न जाए तथा उसका सर्वाधिक उपयोग हो।

**पुस्तक जोड़ने का कार्य**—शीराज़ाबंदी के उपरांत पांडुलिपि को जोड़ने अथवा फटी या उधड़ी हुई पांडुलिपि को पुनः जोड़ने का कार्य हुनर-ए-विसाली (विसाल अर्थात् जोड़ना) कहलाता है। वास्तव में पांडुलिपि में कीड़ा लगने, दीमक लगने, फटने, नमी लग जाने, बारंबार प्रयोग करने के कारण पांडुलिपि के हाशियों के खराब होने, परिवहन के कारण पांडुलिपि की जिल्द ढीली या खुल जाने आदि सभी स्थितियों में क्षतिग्रस्त पांडुलिपि को सुधारने का कार्य अधिकतर विसाली ही करते थे। पांडुलिपि के सड़े या फटे पन्नों या उनके किनारों, यहाँ तक कि पन्ने के चित्रित भाग के किसी अंश को बदलने या सुधारने का काम भी उनके कुशल एवं दक्ष हाथों से संपन्न होता था। अनमोल

एवं बहुमूल्य पांडुलिपियों का सुरक्षित रख-रखाव इन्हीं विसालियों पर निर्भर था।

**खुशनवीसी (सुलेखन कला)**—इसलामी दुनिया में सुलेखन कला के क्षेत्र में ईरानियों को उच्च स्थान प्राप्त है। तृतीय शताब्दी हि. के अंत तथा चतुर्थ शताब्दी हि. के आरंभिक कालीन ईरान में अरबी लिपि ने पहलवी लिपि का स्थान ले लिया था। उस समय तक अरबी लिपि में 'कूफी' (कूफा शहर संबंधी) तथा 'नस्ख' की एक शैली प्रचलित थी। कूफी लिपि की शैली को पवित्र कुरान तथा नस्ख को अन्य सभी राजकीय कार्यों में प्रयोग किया जाता था। इसी काल में मशहूर कातिय अथवा खुशनवीस इब्ने मुक्ल्ला (सन् 272-328 हि.) अब्बासी खलीफा अल-मुक्तदिर का वज़ीर बना। उसने कई नवीनताएँ लिपि में सम्मिलित कीं।

ईरान में इसलाम धर्म के आगमन के पश्चात् भी कई वर्षों तक पहलवी भाषा का चलन निरंतर रहा। यहाँ तक कि तबरीस्तान से प्राप्त सिक्के पर पहलवी भाषा में सन् 140 हि. लिखा हुआ मिला है। विद्यमान स्रोतों से यह बात प्रमाणित है कि पाँचवीं शताब्दी हि. तक ईरान में कूफी लिपि का प्रयोग पवित्र कुरान, भवनों पर की गई उत्कीर्ण लिखाई आदि कार्यों में होता था लेकिन साधारण कार्यों में नस्ख की भाँति की लेखन शैली प्रयुक्त होती थी। परंतु यह शैली पुरानी तथा नवीन नस्ख शैली से बिल्कुल भिन्न थी। उसी लिपि में कुछ परिवर्तन हुआ तथा उसका नाम 'नस्तालीक़' कहलाया। इस लिपि का सर्वप्रथम नमूना एक भूमिखंड विक्रय पत्र से संबंधित है जिसकी तारीख़ मारग्रेट के अनुसार सन् 401 हि. है। इसी लिपि को पाँचवीं शताब्दी हि. से संबंधित पवित्र कुरान के फ़ारसी अनुवाद में भी पाया गया है जबकि उसके मूल पाठ में 'सुल्स' तथा 'रेहान' लिपि का प्रयोग किया गया है।



कूफी लेखन शैली

अब्बासी खलीफ़ा याकूत मुस्तासिम के काल अर्थात् आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में सुलेखन के इतिहास में एक नवीन अध्याय जुड़ा। याकूत मुस्तासिम के काल के उपरांत सुलेखन में विख्यात एवं कुशल छः उस्ताद सुलेखक अहमद सुहरवर्दी, युसुफ़ मशहदी, सैयद हैदर, नस्र उल्लाह तबीब, अर्गून आवुली और मुबारक शाह तबरेज़ी का खुशनवीसी

के क्षेत्र में पदार्पण हुआ। इनके आगमन से सुलेखन के केंद्र खुरासान, फारस और आजरबाइजान बने। इन प्रमुख केंद्रों के प्रसिद्ध खुशनवीसों में पीर वाहया जमाली, अब्दुल्ला सैरफी, जाफर वायसकराई आदि ने सुलेखन कला को आठवीं, नवीं तथा दसवीं शताब्दी में चरम सीमा तक पहुँचाने में मार्गदर्शन किया। इन शताब्दियों में यहाँ के विभिन्न राजवंशों, जैसे जलायरी, मुजफ्फरी, तैमूरी और सफ़वी ने इस कला को पूर्ण संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्रदान किया। यहाँ तक कि राजवंशों के कुछ शासक स्वयं कुशल सुलेखक थे। राजघरानों में बच्चों की आरंभिक शिक्षा में सुलेखन अभ्यास की प्रथा डाली गयी। तैमूरी शासक सुलतान शाहरुख के इब्राहीम मिर्जा तथा वायसकर मिर्जा बेहतरगीन खुशनवीस थे। इसी प्रकार सुलतान याकूब, आक किवानलू, बहराम मिर्जा, सफ़वी शासक शाह इसमाइल, सफ़वी राजकुमारों में बहराम मिर्जा एवं इब्राहिम मिर्जा ने सुलेखन में पूर्ण दक्षता प्राप्त की।

प्रारंभ में 'तालीक़' शैली का प्रयोग केवल पुस्तकों तथा पत्र व्यवहार में किया जाता था लेकिन दरबारी कार्यों के शीघ्र निपटान के लिए इसी शैली में जब तीव्रता से लिखना प्रारंभ हुआ तथा अक्षरों के आकारों का रूप परिवर्तित हुआ तो उसे 'शिकस्ता' (टूटा हुआ) शैली का नाम दिया गया। आरंभ में इसे तालिक़-तालिक्के शिकस्ता कहा जाता था। ख़ाजा ताजा सलमानी इस्फ़ाहानी, अब्दुलहक़ अस्तराबादी, दरवेश अब्दुल्ला सुलतानी, ख़ाजा शिहाबुद्दीन अब्दुल्ला मरवारीद, ब्यानी किरमानी, ख़ाजा अज़्लियार मुंशी गुनावादी तथा नजमुद्दीन मसऊद साबजी इस शैली के मशहूर खुशनवीसों में माने जाते थे।

आठवीं सदी हि. के द्वितीय दशक में 'नस्ख' (अरबी) शैली तथा 'तालिक्' (ईरानी) शैली को मिलाजुला कर जो शैली परिवर्तन हुआ उसे नस्तालीक़ कहा गया। यह शैली लिखने एवं देखने में अतिसुंदर तथा इसमें अक्षरों के घुमाव बढ़े आकर्षक हैं। यह शैली ईरानियों में ही नहीं अपितु फ़ारसी लिखने एवं बोले जाने वाले सभी क्षेत्रों, विशेषतः हिंद उपमहादीप तथा तुर्की, में प्रसिद्ध हुई। सुलेखकों ने इसमें नये-नये सुधार एवं बेहतर प्रस्तुति की तथा अपनी दक्षता एवं कुशलता के परिचय के लिए नवीन तत्त्वों का समागम किया। आगामी वर्षों में तालिक़, शिकस्ता का स्थान भी 'शिकस्ता-नस्तालीक़' ने ले लिया। नस्तालीक़ का उद्गम स्थल तबरेज़ माना जाता है। यहाँ के विख्यात सुलेखक पीर अली तबरेज़ी ने इस शैली को नियमित किया तथा इसे अन्य शैलियों की अपेक्षा सबसे उत्तम एवं



नस्तालीक़ लेखन शैली

मिन्न बनाया। मीर अली तबरेज़ी के अथक प्रयास से यह शैली ईरान के अन्य शहरों में अपनाई गई। तबरेज़ी के बाद दूसरा प्रमुख केंद्र हेरात में उभरा। इस शैली के प्रवीण एवं कुशल उस्तादों में मिर्ज़ा जाफ़र तबरेज़ी उर्फ़ वायसक़री, अज़हर तबरेज़ी, सुलतान अली मशहदी, सुलतान मुहम्मद ख़ंदान, सुलतान मुहम्मद नूर, (हेरात का विख्यात सुलेखक) मीर अली हरवी, सैयद अहमद मशहदी, महमूद शहावी, मलिक दीलमी, मुहम्मद हुसैन कश्मीरी, शाह महमूद निशापुरी तथा बाबा शाह इस्फ़ाहानी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस काल के उत्कृष्ट सुलेखन नमूनों में मशहूर शायर अली शेर निवायी का दीवान (काव्य-संग्रह) है जिसे विख्यात सुलेखक अली मशहदी ने सन् 905 हि. में अलंकृत लिपि से सुसज्जित किया। इसी प्रकार प्रसिद्ध सूफी कवि जामी के दीवान में खुशनवीस अब्दुल करीम ख़ारज़्मी कुत खुशनवीसी आश्चर्यजनक है। यह दोनों पांडुलिपियाँ मेट्रोपॉलिटन म्यूज़ियम की धरोहर हैं। मशहद के पुस्तकालय आस्ताना-ए-कुदस में सुसज्जित पवित्र कुरान की प्रति जिसे इब्राहीम सुलतान ने सन् 827 हि. में इसी आकर्षक लिपि में सजाया, उल्लेखनीय है।

सफ़वी शासनकाल में जहाँ स्थापत्य कला तथा अन्य ललित कलाओं को पूर्वकालों की अपेक्षा अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ उसी प्रकार सुलेखन कला भी असीम राज्य कृपा की आभारी बनी।

शाह अब्बास प्रथम के काल में विख्यात गुरु मीर अम्माद सैफ़ी क़ज़वीनी ने इस कला को नये आयाम, शासकीय प्रोत्साहन तथा संरक्षण प्रदान किया। उसकी प्रसिद्धि ईरानी सीमाओं के बाहर हिंदुस्तान एवं तुर्की राजदरबारों तक फैली। उसके हस्तलिखित नमूनों को पाने के लिए शासकों में होड़ लगी रहती थी।

सफ़वी काल में ही नस्तालीक़ का उपांग शिकस्ता-नस्तालीक़ का चलन हुआ। इस शैली के सुलेखकों में मुहम्मद शफ़ी हुसैनी को विशेष स्थान प्राप्त है। उसकी शैली को 'शफ़ीआ' (शिकस्ता) कहा जाता था। उसके अतिरिक्त मिर्ज़ा हसन किरमानी, मुहम्मद मोहसिन कुमी, मुहम्मद इब्राहीम कुमी, मुहम्मद अफ़ज़ल गुनावादी, मुहम्मद अली इस्फ़ाहानी तथा ज़ैन-उल-आब्दीन किरमानी ने इस शैली में अपने जौहर दिखाए तथा इसे एक स्वतंत्र शैली का रूप प्रदान किया।

यद्यपि ईरान में छापाखाना तेरहवीं सदी हि. के प्रारंभिक वर्षों में आ चुका था लेकिन खुशनवीसों का प्रभुत्व क़ायम था। इसी सदी के तीसरे दशक में छापेखाने की तीव्र गति ने खुशनवीसी की धीमी रफ़्तार को अधिक धक्का पहुँचाया। परिणामस्वरूप इस कला के उस्ताद खुशनवीसों ने इस व्यवसाय को जीवनवापन के लिए राजकीय संरक्षण न मिलने के कारण त्यागना शुरू कर दिया। इस काल के सुलेखकों में मिर्ज़ा अहमद तबरेज़ी, मुहम्मद हाशिम ज़रग़र आदि उल्लेखनीय हैं। तेरहवीं सदी के प्रथम तीन दशकों में खुशनवीसी के इतिहास में एक अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया कि खुशनवीसों का ध्यान पुनः नस्ख शैली की ओर आकृष्ट हुआ। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि पिछली दो सदियों में जैसे फ़ारसी काव्य जटिल एवं कठिन विषयों एवं भाषा की भ्रमर के कारण लोकाप्रिय न रहा उसी प्रकार नस्तालीक़ शैली भी अपने चरमविंदु पर पहुँच कर हासोन्मुख हुई। जिस प्रकार फ़ारसी साहित्य में साधारण भाषा का पुनरागमन हुआ उसी प्रकार खुशनवीसी में नस्ख जिसे सिर्फ़ अरबी भाषा तक सीमित कर दिया गया था, फिर लौटकर फ़ारसी की शैली बनी। यद्यपि यह परिवर्तन नस्ख की कोणीय बनावट के कारण अधिक समय तक ईरानियों को न लुभा पाया। परन्तु इससे नस्तालीक़ में उत्पन्न की गई जटिल एवं कठिन बनावट की

अवश्य छंटाई हुई। नस्ख शैली के मशहूर खतातों में मुहम्मद मोहसिन इस्फाहानी, अब्दुल्ला आशूर रनानी, अब्दुल अली खुरासानी, जैन-उल-आब्दीन, क़ज़वीनी, विसाल शीराज़ी (तथा उनके सुपुत्र विकार, हकीम एवं दाऊदी), मिर्ज़ा अहमद शामलू, अशरफ़-उल-कुत्ताब इस्फाहानी, अली रिज़ा परतो इस्फाहानी आदि ने नस्ख शैली में उत्कृष्ट सुलेखन कार्य किए। नस्तालीक़ के उद्धार के उपरांत खुशनवीसी का एक बड़ा वर्ग पुनः नस्तालीक़ शैली में सुलेखन करने लगा। इनमें मिर्ज़ा अब्बास नूरी, मिर्ज़ा असदुल्लाह शीराज़ी, मिर्ज़ा अली अक़्बर तफ़रशी, मिर्ज़ा फ़तह अली हिजाब शीराज़ी, मिर्ज़ा मुहम्मद कुलहर तथा मिर्ज़ा मुहम्मद हुसैन कातिय उस्सुल्तान शीराज़ी आदि ने नस्ख शैली में प्रतिभा एवं योग्यता का परिचय दिया।

14वीं सदी हि. के प्रथम पचास वर्षों में मुद्रण कार्य में हुए दिन-प्रतिदिन सुधार तथा आधुनिकीकरण ने खुशनवीसी की कला को विशेष हानि पहुँचाई। इस काल के मिर्ज़ा मुहम्मद हुसैन अमाद-उल-कातिय फ़ारसी की सभी छः शैलियों में निपुण एवं प्रवीण सुलेखक हुए हैं। उनके अतिरिक्त अब्दुल हमीद अमीर-उल-कुत्ताब, मलिक-उल-कलामी कुर्दिस्तानी के अतिरिक्त कोई भी सुलेखक खुशनवीसी के पूर्व गुरुजनों के स्तर तक न पहुँच पाया।

वर्तमान काल में कई संस्थाएँ इस विशिष्ट एवं पारंपरिक कला को जीवित रखने में प्रयत्नशील एवं कार्यरत हैं। खुशनवीसी अर्थात् सुलेखन की परिपद् (अंजुमन-ए-खुशनवीसान) में विभिन्न प्रकार की शैलियों के लिखने का अभ्यास कराया जाता है। स्मरणीय है कि ईरान में लिखी गई पांडुलिपियों में बारह (हिंदुस्तान में प्रायः सत्तरह) प्रकार की शैलियों का प्रयोग होता रहा है। यह शैलियाँ निम्नलिखित हैं : क़ूपी, क़दीम नस्ख, रेहान, सुल्स, नवीन नस्ख, रिक्का, तालिक़, शिकस्ता तालिक़, नस्तालीक़, शिकस्ता नस्तालीक़ के अतिरिक्त तुग़रा, गुलज़ार, तथा अलंकृत क़ूपी (आलंकारिक शैलियाँ आदि)।

ईरानियों की नस्ख, नस्तालीक़ तथा सुल्स शैलियों की रचना हिंदुस्तान, तुर्की तथा मिस्र एवं अन्य क्षेत्रों से भिन्न है।

**पांडुलिपि अलंकरण—पांडुलिपियों के अलंकरण की निम्नलिखित विधियाँ हैं :**

**तज़हीब (स्वर्णलेपन)—**पांडुलिपि अलंकरण में तज़हीबकारी कुशल एवं निपुण चित्रकारों द्वारा की जाती है जिन्हें तज़हीबकार कहा जाता है। तज़हीबकार पांडुलिपि के पृष्ठ को तज़हीबकारी कला से विशेष आकर्षण प्रदान कर देते थे। प्रायः यह कार्य धार्मिक तथा साहित्यिक विषय संबंधी पुस्तकों पर किया जाता था जिससे कि विषय विशेष को पढ़ने वालों की आस्था एवं श्रद्धा में वृद्धि हो। तज़हीबकारी में पृष्ठ के किनारे तथा हाशिए पर स्वर्णलेप अथवा चाँदी का पानी चढ़ाकर विविध प्रकार के बेलबूटे सलमान-सितारे आदि छोटे अथवा बड़े खानों में बनाए जाते रहे हैं। स्वर्णलेपन अथवा चाँदी का पानी के चढ़ाने की क्रिया को आजीब (सजावट) कहा जाता है। कुछ मतानुसार यह कार्य मानी धर्म के मतानुयायियों द्वारा प्रारंभ किया गया। स्वर्णलेपन अथवा चाँदी का पानी चढ़ाने के अतिरिक्त इस क्रिया में केवल रंगीन पानी चढ़ाकर उस पर बेल-बूटे आदि बनाने का रिवाज भी रहा है।

आरंभ में यह कार्य केवल पवित्र कुरान की पांडुलिपियों पर किया जाता था। वास्तव में यह सासानी काल

की चित्रकारी का नवपरिवर्तित रूप है। तज़हीबकारी का प्रथम उदाहरण तृतीय सदी हि. की पवित्र कुरान की एक प्रति है। उस काल में कूफी लिपि का प्रयोग होता था तथा प्रथम या अंतिम दो पृष्ठों पर तज़हीबकारी की जाती थी। मैट्रोपोलिटन म्यूज़ियम में संगृहीत पवित्र कुरान की पांडुलिपियाँ जो अब्बासी काल में लिखी गई, इसी पद्धति पर आधारित हैं। लेकिन सलजूक काल की प्रतियों में प्रथम अथवा अंतिम पन्नों की बजाय कई पन्नों पर इस प्रकार का अलंकरण देखने को मिलता है। ब्रिटिश म्यूज़ियम में रखे एक कुरान मजीद की पांडुलिपि में इस प्रकार का अलंकरण देखने योग्य है। राहतुस सुदूर के लेखक रावंदी ने लिखा है कि पहले मुसहिफ़ (पृष्ठ तैयार करने वाला) सफ़ह तैयार करता था। मुज़हिब (तज़हीबकार) उसे सजाता था। उसके बाद नक्काश उस पर नक्काशी करता था। इस प्रकार एक पांडुलिपि के पृष्ठ तैयार होते थे। सुलतान वायसंकरा के काल में कई प्रकार के नये एवं विविध आयाम इस कार्य में प्रकट हुए। इस काल की पांडुलिपियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पन्नों (विशेषतः प्रथम दो) पर चित्रकारी के अलावा तश्ईर का कार्य भी तज़हीब के साथ किया जाने लगा। दीवान-ए-सुलतान अहमद जलायर की पांडुलिपि ऐसी प्रथम प्रति है जिसमें यह परिवर्तन दिखाई देता है। आठवीं शताब्दी हि. के प्रसिद्ध तज़हीबकारों में नज़ामुद्दीन महमूद मुज़हिब (सन् 782 हि.) तथा नवीं शताब्दी हि. के निज़ामुद्दीन बिन रज़ी नक्काश जिनकी तैयार की हुई ताज-उल-मा'सिर की पांडुलिपियाँ उल्लेखनीय हैं।

ईस्खानी काल में इस कार्य में अधिक प्रगति एवं उन्नति हुई। अंकों के चित्रण के अतिरिक्त बेलबूटों तथा पत्तियों के भी नमूने तज़हीब में बनने शुरू हुए। इसके कारण पन्ने के माथे पर अष्टपंखी सितारों के स्थान पर मोरपंखी एकल रूप में चित्रित होने लगे। इसके साथ-साथ (पवित्र कुरान के) विभिन्न सूरों के प्रारंभ में बड़े आकार में कूफी लिपि में लिखित लाजवर्दी (चमकदार आसमानी रंग) पृष्ठाधार पर दर्शनीय है। इस काल की अधिकांश पांडुलिपियों का मध्य भाग गहरे नीले रंग तथा आसपास के हाशियों एवं किनारों पर सुनहरी, आसमानी, रक्ताभ, हरा



तज़हीबकारी (स्वर्णलेपन)

तथा नारंगी रंग का प्रयोग है। सुनहरी तथा आसमानी रंग का एक ही स्थान पर प्रयोग इस काल के तज़हीबकारों के कार्य की विशिष्टता है। विशेषतः तबरेज़ इस कार्य का मुख्य केंद्र था। यहाँ की पद्धति का प्रभाव अन्य केंद्रों पर भी हुआ। इसी काल में पवित्र कुरान के अतिरिक्त अन्य विषयों की पांडुलिपियों पर भी तज़हीबकारी का चलन इसी काल की देन है।

ऐतिहासिक रूप से तैमूरी काल के नाम से प्रसिद्ध नवी तथा दसवीं शताब्दी हि. में इस अनुपम कला के लिए हेरात शहर मुख्य आकर्षण केंद्र बना। इसी प्रकार इस काल का शीराज़ शहर भी उल्लेखनीय केंद्रों में से एक है। इस काल में इस अनूठी कला के माहिर उस्तादों ने तज़हीब में प्राकृतिक दृश्यों तथा पक्षियों के सुंदर चित्रण पर विशेष ध्यान दिया। सुनहरी तथा आसमानी रंग तज़हीबकारी के प्रमुख रंग थे। इनके आधार पर उत्तम एवं विशिष्ट नमूनों का सृजन हुआ जिसमें हेरात शैली में तैयार किया हुआ शाहनामा (सन् 833 हि.) राष्ट्रीय संग्रहालय (मूज़-ए-मिल्ली) तेहरान की जीनत बना हुआ है। इस समय के प्रसिद्ध तज़हीबकारों में अमीर खलील मीरक नक्काश तथा मौलाना हाजी मुहम्मद नक्काश ने इस अनुपम कला की उन्नति में सराहनीय योगदान दिया है।

सफ़वी काल में हुए परिवर्तनों में हाशिए का आकार अपेक्षाकृत चौड़ा है जिसमें प्राकृतिक दृश्यों, पशु-पक्षियों तथा मानव चित्रों का चित्रण उल्लेखनीय है। चित्रों में हरा, सुनहरी तथा पीला रंग भी नवीनता का प्रतीक है। कुछ कार्यों में चार्दी-रंग का भी प्रयोग मिलता है। कुछ हाशियों में सोने के पानी से बनाए हुए जानवरों के चित्र भी मिलते हैं। इस काल में अधिकांश धार्मिक पांडुलिपियों के अनेक पन्नों पर तज़हीब कार्य देखा जा सकता है। इस काल के मशहूर कलाकारों में मेहमूद मुज़हिब, नक्काश बुखारार्द, मौलाना हसन बग़दादी, मीरक तथा मौलाना अब्दुल्ला शीराज़ी के नाम उल्लेखनीय हैं। सफ़वी काल की तज़हीबकारी तथा जिल्दों की नक्काशी



तश्दिर (चित्र अलंकरण)

का स्पष्ट प्रभाव उस काल की कालीन बुनने की कला में झलकता है। इस काल में अलंकृत साहित्यिक कृतियों में मशहूर शायर जामी की जूलेखा तथा निजामी गंजवी कृत खुम्सा (पाँच काव्य संग्रह) विशेष रूप से वर्णनीय हैं। यह दोनों पांडुलिपियाँ मैट्रोपोलिटन संग्रहालय की अनमोल धरोहर हैं।

जुंद एवं काजारी काल में इस कला को अस्थिर राजनीतिक एवं आर्थिक अवस्था तथा आधुनिकीकरण के कारण अधिक प्रोत्साहन नहीं मिला। काजारी शासक फ़तह अली शाह तथा नासिरुद्दीन शाह के काल में तज़हीबकारी की एक नई शैली की नींव पड़ी जिसकी विशेषताएँ हेरात शैली से भिन्न थीं। इस शैली के नामवर उस्तादों में मिर्ज़ा मुहम्मद अली शीराज़ी, मिर्ज़ा यूसुफ़ मुज़हब वाशी, मिर्ज़ा अब्दुल वहाब मुज़हब वाशी आदि कई तज़हीबकारों ने अपनी प्रतिभा के अविस्मरणीय नमूने दिए हैं। काजारी शासकों ने इस कला को प्रोत्साहित करने के लिए प्रमुख तज़हीबकार को मुज़हब वाशी का पद प्रदान किया।

**तश्ईर**—पांडुलिपियों में चित्रित प्राकृतिक दृश्यों, बेल-बूटों, शाखों तथा पत्तों, पत्थरों, जानवरों की लड़ाई के दृश्यों आदि के लिए प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द 'तश्ईर' है। तज़हीब से अलग यह शैली भी तैमूरी काल से प्रारंभ हुई। इसमें अधिकांश आखेट अथवा युद्ध के दृश्यों को चित्रित किया जाता था। बाद के शासन कालों में तश्ईरकारी में दरबार का चित्रण, राग-रंग की महफ़िल तथा मल्लयुद्ध के दृश्य पूर्व इसलाम काल की शिलाओं पर की गई उत्कीर्ण चित्रकारी की याद ताज़ा कराता है। सोने के पानी के अतिरिक्त फूलों से बनाए गए विभिन्न रंगों का प्रयोग भी इस कला में होता था। रंगीन तश्ईरकारी का काम बहुत देर बाद शुरू हुआ। तश्ईर के साथ जो अन्य हुनर पांडुलिपियों के चित्रण में देखने को मिलते हैं उनमें कलमकारी भी शामिल है।

**तरसीइ (अलंकरण)**—पांडुलिपि अलंकरण में तरसीइकारी तज़हीब के समान है। लेकिन दोनों में अंतर यह है कि तरसीइ में तज़हीब की तरह स्वर्णलेपन नहीं किया जाता। तरसीइ में सोने के पानी के स्थान पर केवल अन्य रंगों से चित्रण किया जाता है जिसको 'मुरसआ' (चित्रित) कहा जाता है।

**तहरीर (लेखनी)**—कभी-कभी अलंकृत चित्रों तथा बेल-बूटों के नीचे अथवा किनारे या हाशिफ़ के पास बहुत महीन क़लम से सुनहरी रंग में श्वेत रंग मिलाकर लिखा जाता है। सुपाट्यता के लिए अक्षरों पर काली स्याही से सज्जा भी की जाती है। ऐसी अलंकृत लेखनी को 'मुहॉरिर' कहा जाता था। मुख्यतः यह कला अलंकृत लेखन के लिए है।

**ज़रअफ़शानी**—उपरोक्त कलाओं की तरह ज़रअफ़शानी (सोने के पानी को पन्ने पर फैलाना) भी पांडुलिपि अलंकरण की एक कला है। इसमें लेखन से पूर्व विधि विशेष अनुसार मुख्य विषय वाले पूरे पन्ने पर सोने का पानी फैला दिया जाता है। इसके दो प्रकार हैं : (क) पूरे पन्ने पर स्वर्ण लेपन करना (ख) मात्र हाशिफ़ पर स्वर्णलेपन करना अथवा मुख्य लेखन स्थान पर गाढ़ा तथा हाशिफ़ में हल्का स्वर्णलेपन करना। यदा-कदा स्वर्णलेपन के स्थान पर रजतन भी किया जाता था तथा कभी-कभी दोनों का मिश्रण भी प्रयुक्त होता था। यह कार्य लेखन एवं चित्रण कार्य से पूर्व संपन्न किया जाता था। अधिकांशतः स्वर्णलेपन को वरीयता दी जाती थी क्योंकि धूप आदि की तपिश से चाँदी का रंग काला पड़ जाता था। इस कला के ज्ञाता स्वर्ण तथा रजत वर्ण को छोड़कर अन्य रंगों के लिए प्राकृतिक रंगों का अधिक उपयोग करते थे क्योंकि उसकी चमक अधिक होती थी। जिन कागज़ों पर इस प्रकार

का लेप किया जाता था वे 'कागज़-ए-अफ़शॉ' कहलाते थे।

**स्याही—कभी-कभी** पांडुलिपियों के लेखन कार्य में काली स्याही के स्थान पर अन्य रंगों की स्याही प्रयोग की जाती थी। सुनहरी अथवा अन्य रंगों के सुलेख को काली स्याही से सुसज्जित किया जाता था। विभिन्न रंगों की स्याही या मसि कई प्रकार से प्राप्त की जाती थी, जैसे खनिज, वनस्पति अथवा कृत्रिम पदार्थ आदि। अधिकांशतः पांडुलिपि लेखन में खनिज अथवा वनस्पति से प्राप्त स्याही का ही प्रयोग किया जाता था। विविध प्रकार के रंगों अथवा स्याही का प्रयोग पांडुलिपि अलंकरण के विभिन्न पहलुओं के लिए होता था।

**अक्कासी (छाया चित्रण)—**आधुनिक छविकारी (फोटोग्राफी) के आविष्कार से पूर्व छाया चित्रण के लिए किसी पसंदीदा चित्र के गत्ते पर बने डिज़ाइन ट्रेस कर पन्ने विशेष पर उतार दिया जाता था तथा फिर उसमें इच्छित रंग भरकर जीवंत और दर्शनीय बना दिया जाता था। इस कला के सूत्रधार शाह तहमास्ब सफ़वी काल के मशहूर चित्रकार मोलाना कपिक हरवी को माना जाता है।

**क़त्ताई (काट-छाँट)—**अन्य उपकलाओं के सुंदर बेलबूटों, चित्रों एवं अलंकृत लेखन को एक श्वेत कागज़ से काटकर रंगीन कागज़ पर चिपकाने अथवा इसके विपरीत क्रम में अलंकरण हेतु प्रयोग को क़त्ताई कहा जाता है। मुख्यतः चित्रण कार्य के लिए इस कला का प्रयोग होता था।

**मूल और हाशिया (मूल पाठ एवं हाशिया)—**इस विधि का प्रयोग पांडुलिपियों के संरक्षण में किया जाता है। उल्लेखित पारिभाषिक शब्द के अनुसार मूल पाठ को मूल हाशिफ़ वाले क्षेत्र के नष्ट अथवा विकृत होने की अवस्था में नए हाशिफ़ में संलग्न किया जाता है। इसका कारण मूल हाशिफ़ के रंगों का फीका पड़ने, प्राकृतिक रंगों के खराब होने अथवा सहाफ़ी का मूल पाठ पर नया हाशिया जोड़ने की रुचि पर आधारित होता है। इस कार्य से पांडुलिपि का जीवन काल बढ़ जाता है तथा मूल पाठ संरक्षित रहता है। लेकिन विभिन्न कागज़ों के जोड़ से पांडुलिपि की मान्यता पर प्रभाव अवश्य पड़ता है।

उपरोक्त मुख्य कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्य भी पांडुलिपि अलंकरण में किए जाते हैं :

रेखांकन, जंजीरदार रेखांकन, शीर्षक अथवा सिरनामा, अध्याय शीर्षक तुरंज (पन्ने के हाशिफ़ के चारों कोनों पर चौकोर खानों में बनाए गए बेलबूटे), शीर्ष भाग में बना तुरंज, अर्धवर्गाकार तुरंज, शमसा (लंबन टीपकारी), सूची का अलंकरण तथा रेखाओं के मध्य स्वर्णलेपन।

**आकार एवं माप—**पांडुलिपि का आकार पांडुलिपि की महत्ता का दर्पण होता है। इसीलिए विभिन्न आकार की पांडुलिपियाँ विभिन्न नामों से प्रसिद्ध रही हैं।

बाजूबंदी (30×20 मि. मी.); वगली (40×60 मि. मी.); जा नमाज़ी (120×20 मि. मी.); हमायली (जा नमाज़ के आकार की मगर अधिक मोटी। इसे हार की तरह लटका लेने के कारण हमायल अर्थात् 'कंठा' कहा जाता है। प्रायः इस आकार में पवित्र क़ुरान की पांडुलिपियाँ तैयार की जाती थीं। इसीलिए हमायल शब्द का एक अर्थ गुटका क़ुरान भी है।); नीम-रूबई (18×100 मि. मी.); वज़ीर-ए-सगीर या कूचक (22×140 मि. मी.); वज़ीरी (240×160 मि. मी.); वज़ीरी बुजुर्ग (300×200 मि. मी.); सुलतानी (400×300 मि. मी.); रहली (500×300 मि. मी.); रहली

बुजुर्ग (600 या अधिक×350 मि. मी.)।

इनके अतिरिक्त जिल्दसाज़ों ने अन्य प्रकार से भी पांडुलिपियाँ बनाई हैं। इनमें बयाज़, ख़ि़ाती (ईटाकार), तूमार कुंडलित (अधिकांशतः शाही आदेश पत्र के लिए प्रचलित) तथा मुक्क़ाआ (एलवम) के आकार भी प्रयोग में रहे हैं।

ईरान के महानगरों, विशेषतः तेहरान, इस्फ़ाहान, शीराज़, मशहद, कुम, तबरेज़, कज़वीन, काशान, यज़्द आदि के संग्रहालयों, पुस्तकालयों तथा निजी पुस्तकालयों में विभिन्न विषयों की पुस्तकों की महत्त्वपूर्ण पांडुलिपियाँ संगृहीत हैं। धार्मिक एवं शैक्षणिक संस्थानों में पांडुलिपि संरक्षण तथा उनके रख-रखाव संबंधी कार्यों के लिए सभी आधुनिक व्यवस्था उपलब्ध हैं। यह पांडुलिपियाँ संस्कृति एवं सभ्यता की विपुल धरोहर, संपत्ति तथा दर्पण हैं।

ईरान के कई पुस्तकालयों में सुरक्षित पांडुलिपियों की पारिभाषिक ग्रंथ सूचियाँ वैज्ञानिक आधार पर तैयार होकर छप चुकी हैं। अधिकांश पुस्तकालयों में माइक्रोफ़िल्मिंग सुविधा भी उपलब्ध है। विश्वभर के शोधकर्ता उल्लिखित पुस्तकालयों से शैक्षिक संबंध बनाए रखते हैं।

## नाट्यकला

सांस्कृतिक और भौगोलिक वातावरण के अनुरूप नाट्यकला की विभिन्न शैलियाँ इरान के प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न रूपों में प्रचलित रही हैं। विषयवस्तु के अनुसार नाट्यकला की प्रमुख छः शैलियों को मान्यता प्राप्त है : (1) पारंपरिक नाट्य शैली (मनोरंजन संबंधी उत्सवों पर आयोजित शोभा यात्रा अथवा जुलूस नाट्य शैली), (2) कथावाचन नाट्य शैली, (3) कठपुतली नाट्य शैली, (4) शोक नाट्य शैली, (5) हास्य नाट्य शैली, तथा (6) यूरोपियन नाट्य शैली।

उपरोक्त शैलियों की भी कुछ उपशाखाएँ हैं जिनका प्रचलन पिछले कुछ वर्षों से व्यापक रूप से बढ़ रहा है। इनमें नुककड़ नाटक प्रमुख है। प्रस्तुत अध्याय में सभी शैलियों का वर्णन तो संभव नहीं है फिर भी मुख्य शैलियों का ऐतिहासिक क्रमानुसार परिचय कराया गया है।

सन् 1357 श. (फरवरी 1979 ई.) अर्थात् इसलामी ईकलाव के उपरान्त उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से चली आ रही पाश्चात्य शैली से प्रभावित नाट्य परंपरा में प्राचीन परंपरागत शैली का समायोजन हो गया। इसके अतिरिक्त नाट्यकला के पारिभाषिक शब्द जिनका प्रादुर्भाव पिछले कई शतकों में विभिन्न रूप से कालक्रमानुसार हो रहा था, इस काल में नए परिवेश में उभरकर आए। अधिकांश पारिभाषिक शब्द अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषा से संबंधित थे। वे शब्द अपनी-अपनी भाषा में बृहत् रूप में प्रयोग किए जाते थे। उन शब्दों का फ़ारसी में अनुवाद तो हुआ परन्तु उनका मूल भाषा में व्याप्त बृहत् रूप संस्कृति की भिन्नता के कारण फ़ारसी समानार्थी पारिभाषिक शब्दों में न आ पाया। उदाहरणतः थियेटर—फ़ारसी भाषा में प्रायः थियेटर स्थल और मंचित नाटक के सीमित अर्थों में ही प्रयुक्त होता है। इस लेख में पारिभाषिक शब्दों के प्रस्तावित समानार्थी शब्दों सहित इरान में प्रचलित उल्लिखित मुख्य नाटक शैलियों का ऐतिहासिक क्रम इस प्रकार है :

### 1. पारंपरिक नाट्य शैली

इस नाट्य शैली की तीन विशेषताएँ हैं : 1. विषय संबंधी, 2. कालानुसार, 3. उत्तेजक अर्थात् धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं संबंधी भावनाओं को उत्तेजित करने के लिए मंचन करना। इस शैली के नाटकों का मंचन अवसर विशेष पर किया जाता है।

पारंपरिक नाट्य शैली का इतिहास बहुत पुराना है। जन्मती अतायी के अनुसार प्राचीन ईरान में प्रसिद्ध त्योहार, जैसे मेहरगान, सहे, नौरोज़, आदि के अतिरिक्त सर्दियों से सौ दिन पहले अर्थात् अंगूर तोड़ने के समय यह नाटक आनंद मनाने के उद्देश्य से खेले जाते रहे हैं। रातभर यह उत्सव चलता रहता है और लोग लोक नाटकों और लोक कथाओं पर आधारित नाटकों को खेलते हैं। सभी पात्र जानवरों के मुखौटे लगाकर नाटक खेलते हैं। इसी कारण इन्हें पहलवी भाषा में 'सीमाचे' अर्थात् 'छोटी शक्ल' और अरबी भाषा में 'समजात' अर्थात् 'बाल मासकें' या 'मास्क सहित नाच' के नाम से जाना जाता है।

इन पारंपरिक नाटकों को ऐतिहासिक दृष्टि और परंपरा अनुसार दो कालों में विभाजित किया जा सकता है : (1) इसलाम पूर्वकालीन, और (2) इसलामोत्तर कालीन।

इसलाम पूर्वकाल में धार्मिक नाटकों के उदाहरण इस प्रकार हैं : सोगे-सियावुश, मुगकुशी, कूसे बरनशीन और मीर नौरोज़ी। ईरान में इसलाम धर्म के आगमन के पश्चात् मुगकुशी और सोगे-सियावुश पर प्रतिबंध लगा दिया। लेकिन कुछ वर्ष उपरांत ये दूसरी नाट्य शैली में परिवर्तित हो गए।

सोगे-सियावुश एक शोक नाटक है जो कि सियावुश के बलिदान संबंधी विषय पर प्राचीन समय से ईरान में खेला जाता है। नरशखी (चौथी शताब्दी हि.) के अनुसार यह नाटक बुखारा की ऐतिहासिक जानकारी देता है। यह नाटक उसके समय में बुखारा में खेला जाता था। इस बारे में वह कहता है, "बुखारा के लोग, सियावुश के मरने पर अजीब लोक गीत रचते थे जिन्हें गवैये कीने (ट्रेप) सियावुश कहते थे।" क़बादी ने अरबी से फ़ारसी में यह अनुवाद (सन् 506 श./1127 ई.) किया था। इस नाटक के मंचन के कुछ चित्र, अलैग्ज़ेंडर मोनगेट द्वारा लिखित पुस्तक 'बास्तान शिनासी-ए-शोख़ी' में छपे हैं।

हेरोडोट यूनानी इतिहास विशेषज्ञ मुगकुशी नाटक का उल्लेख करते हुए लिखता है कि ईसा पूर्व छठी शताब्दी में, हिख़ामंशियों के काल में यह नाटक आरंभ हुआ। यह नाटक, राजनीतिक और विशेष ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित था। हिख़ामंशी बादशाह, मिस्रियों के विद्रोह को कुचलने के लिए भारी लश्कर के साथ सैन्य अभियान पर जाने की तैयारी करता है। वह कूच करने से पहले बादशाहत के दावेदार अपने भाई बरदिया का वध कर देता है। एक मुग़ (पुजारी) बरदिया के वेप में बादशाहत का दावा करता है लेकिन उसका भेद खुल जाता है तथा उसका क़त्ल कर दिया जाता है। इस प्रकार हिख़ामंशी राज्य ग़ैर हिख़ामंशियों के हाथों में जाने से बच जाता है। इसी उत्सव को मनाने के लिए मुगकुशी (अर्थात् मुग़ का वध) नाटक हिख़ामंशियों के काल से मंचित किया जाता है।

नाटक 'कूसे बरनशीन' अर्थात् शरद ऋतु की कठिनाइयों को हँसी-खुशी सहन करने को कहा जा सकता है। इसी प्रकार 'मीर नौरोज़ी' नाटक का मंचन भी वसंत ऋतु की प्रशंसा में किया जाता है। अरब लोग इसको 'रकूवे-कूसज' कहते थे तथा यह बहुत प्राचीन समय से खेला जाता रहा है। अबु रेहान बरूनी, सातवीं सदी हि. क. में ज़करीयाई क़ज़वीनी ने भी इन नाटकों की ओर संकेत किया है। इस नाटक में, एक छोटी दाढ़ी वाला काना और कुरूप पात्र सर्दियों में गधे पर बैठता है। हाथ में एक कौआ या पंखा लिए हुए गाँव या शहर की गलियों में निकल पड़ता है। वह पीला रंग अपने बदन पर मल लेता है ताकि सूर्य की गर्मी उसे पर्याप्त मात्रा

में मिलती रहे। वह ऐसा अभिनय करता है जैसे उसे भीषण गर्मी लग रही हो। लोग उसके पीछे-पीछे चलना आरंभ कर देते हैं और उसकी ओर पानी, बर्फ और मिट्टी फेंकते हैं तत्पश्चात् खेल की वृक्षीश उसको देते हैं। कुछ वर्षों से ईरान के ग्रामीण क्षेत्रों में इससे मिलता-जुलता पारंपरिक नाटक भी खेला जाता है। शहरयारी ने उनमें से कुछ को इस तरह स्मरण किया है गली में जब कूसे समूह आता है तो लोग, विशेषतः बच्चे उसकी ओर बर्फ के गोले फेंकते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वह लोग सर्दी और उसके भय 'कूसे' तथा उसके साथियों को अपनी आबादी से दूर भगाते हैं। सुलेमान आबाद, हमदान में लोग अगर कूसे तथा उसके सहयोगियों को गलियों में देखते हैं तो उन्हें बर्फ के गोले मार-मार कर वहाँ से भगा देते हैं। इस प्रकार सर्दी को एक कुरूप व्यक्ति की उपमा दी जाती है। उसके प्रति घृणा की अभिव्यक्ति इस खेल के माध्यम से की जाती है ताकि लोग सर्दी से आतंकित न हों।

इसी प्रकार वसंत ऋतु की प्रशंसा और स्वागत के लिए भी कुछ मान्यताएँ और परंपराएँ हैं। ईरान में वसंत का आगमन और नए वर्ष का प्रारंभ नौरोज़ त्योहार के उत्सव की खुशियों के साथ जुड़ा हुआ है। घुमक्कड़ कलाकार, नए साल के आगमन, वसंत और नौरोज़ त्योहार से पूर्व अपने पारंपरिक शैली के नाटकों के मंचन की तैयारी में व्यस्त हो जाते हैं और कई बार इनको गर्मियों तक जारी रखते हैं। इन घुमक्कड़ नाटककारों के समूह को, 'नौ रोज़ी खानहा' कहा जाता है।

बीजायी के अनुसार, "नौरोज़ी खानहा (नौरोज़ त्योहार के नाट्यकार) जिनके समूह में तीन या चार मसखुरे (हास्यकार अथवा जोकर) होते हैं रंग-विरंगे कपड़े पहनकर सर्दियों के अंत से कार्यक्रम की तैयारी में व्यस्त हो जाते हैं। वे लोग गाना गाकर, नाचकर और भंडैती द्वारा लोगों का मनोरंजन करते हैं। यह नाट्य समूह कूसे बरनशीन और मीर नौरोज़ी के ही कुछ बच्चे हुए वर्गों में से हैं।"

पारंपरिक नाट्य शैली में मीर नौरोज़ी का मंचन शहर और ग्रामीण क्षेत्रों में अब भी होता है। इसका नाम 'राजनीतिक व्यंग्यात्मक हास्य' भी रखा जा सकता है। इस शीर्षक के अंतर्गत, हास्य, व्यंग्य, भर्त्सना आदि आते हैं। इसमें सत्ता एवं सत्ताधारियों को निशाना बनाया जाता है। नाटककार, घोड़े पर सवार होकर गलियों में इधर-उधर घूमता है और जहाँ कहीं भी उचित वातावरण देखता है वहीं पर हास्य-व्यंग्य शैली में अधिकारियों की भाषा में तानाकशी करते हुए आज्ञा देता है। लोग उसके हास्य-व्यंग्य, भाव-भंगिमा तथा संवाद पर हँसते हैं। इस प्रकार की नाट्य शैली को विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है लेकिन सभी की अंतःक्रिया यही होती है।

जुलूस अथवा चल-नाट्य शैली में अधिकांशतः मीर-नौरोज़ी ही प्रचलित रहा है। समय के साथ-साथ इसमें व्यावसायिक संगीतकार भी जुड़ गये हैं जिनका इतिहास लगभग एक हजार वर्ष पुराना है। वर्तमान काल में एक आदमी अपने चेहरे पर रंग मल लेता है और लाल रंग की पोशाक पहनकर 'हाजी फ़ीरोज़' कहलाता है। कदाचित यह नौरोज़ी खानहों के समूह का ही रूप है। हाजी फ़ीरोज़ और उसके सहयोगी ढोल, नगाड़े और रणभेरी के साथ कभी-कभी नौरोज़ त्योहार पूर्व से लेकर इसके अंत तक, रास्तों और सड़कों पर नाच-गाने और पारंपरिक नाट्य शैली को मंचन करने में व्यस्त रहते हैं। लोगों को खुश रखने के साथ-साथ उनसे अपना मेहनताना भी प्राप्त करते हैं।

ईरान में इस्लाम के आगमन और प्रसार के पश्चात् उभरी कुछ नाट्य शैलियों में जिन विषयों को आधार बनाया गया वह शिआ मत संबंधी हैं। उनमें प्रमुखतः करबला की घटनाओं से उत्पन्न शोक प्रगटन शैली और शिआ मत संबंधी शिक्षाएँ हैं। ईरान में शोक प्रगटन नाट्य शैलियाँ इस प्रकार से हैं : 1. इमाम हुसैन बिन अली (अ) के बलिदान दिवस, मुहर्रम महीने में, उनके रिश्तेदार और दोस्त आदि को कैंद करने की घटनाओं को दर्शाने में कुछ समूह वर्षभर इस शोकमय नाटक के मंचन में व्यस्त रहते हैं। 2. क़ाली शूइयान (क़ालीन धोने वाले) नाट्य शैली काशान के इरदहाल से संबंधित है। इस प्रकार प्रथम शैली राष्ट्रीय स्तर पर होने वाला नाटक है और द्वितीय शैली क्षेत्रीय स्तर पर। लेकिन दोनों ही नाट्य शैलियाँ इस्लामी और शिआ मत से संबंधित हैं।



क़ाली शूइयान (पारंपरिक शोक नाट्य शैली), इरदहाल, काशान

जुलूस शोक नाटक खेलने का उचित समय मुहर्रम महीना है। इस शैली की प्रथा सर्वप्रथम दसवीं सदी ई. (चौथी सदी हि.) में ईरानी शिआ मत समर्थक आले बूईया राजवंश की सहायता और आज्ञा से बग़दाद में आयोजित नाटक से हुई। इसमें तृतीय शिआ इमाम, इमाम हुसैन बिन अली (अ), का बलिदान तथा उनके साथ उनके साथियों और सैनिकों को मुहर्रम महीने की दसवीं तिथि 61वें क़मरी वर्ष (सन् 680 ई.) में यज़ीद बिन मुआविया के सैनिकों और कमाण्डरों द्वारा 'करबला' (इराक़) में पहले कारावास एवं तदुपरांत क़त्ल की याद में शोक मनाया जाता है। सफ़वी एवं क़ाज़ारी शासनकाल में इस नाट्य शैली को राजकीय समर्थन प्राप्त हुआ और इसमें अधिक उन्नति हुई।

शोक संतप्त (अज़ादार) लोग समूह में प्रारंभ स्थल से करबला तक सभी रास्तों पर नोहा (शोक गीत) जिसमें करबला में घटित अमानवीय कुकृत्यों पर गायन एवं विभिन्न वाद्यों के वादन के साथ अपना सिर और वक्षस्थल पीटते हैं। कभी जंजीर तो कभी खंजर तथा चाकू से अपने शरीर को आहत करते हैं। इनके अस्त्र-शस्त्र एवं युद्ध संबंधी साज़-सामान से लड़ाई के मैदान का दृश्य उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त वच्चों के ताबूत, तीरों से छिद्रित मशकें, धातुओं के बने पंजे, डंडे, ज़ख्मी घोड़ा तथा इमाम की पालकी आदि भी जुलूस का मुख्य सामान

ईरान में इस्लाम के आगमन और प्रसार के पश्चात् उभरी कुछ नाट्य शैलियों में जिन विषयों को आधार बनाया गया वह शिआ मत संबंधी हैं। उनमें प्रमुखतः करबला की घटनाओं से उत्पन्न शोक प्रगटन शैली और शिआ मत संबंधी शिक्षाएँ हैं। ईरान में शोक प्रगटन नाट्य शैलियाँ इस प्रकार से हैं : 1. इमाम हुसैन बिन अली (अ) के बलिदान दिवस, मुहर्रम महीने में, उनके रिश्तेदार और दोस्त आदि को क़ैद करने की घटनाओं को दर्शाने में कुछ समूह वर्षभर इस शोकमय नाटक के मंचन में व्यस्त रहते हैं। 2. क़ाली शूईयान (क़ालीन धोने वाले) नाट्य शैली काशान के इरदहाल से संबंधित है। इस प्रकार प्रथम शैली राष्ट्रीय स्तर पर होने वाला नाटक है और द्वितीय शैली क्षेत्रीय स्तर पर। लेकिन दोनों ही नाट्य शैलियाँ इस्लामी और शिआ मत से संबंधित हैं।

जुलूस शोक नाटक खेलने का उचित समय मुहर्रम महीना है। इस शैली की प्रथा सर्वप्रथम दसवीं सदी ई. (चौथी सदी हि.) में ईरानी शिआ मत समर्थक आले बूईया राजवंश की सहायता और आज्ञा से बग़दाद में आयोजित नाटक से हुई। इसमें तृतीय शिआ इमाम, इमाम हुसैन बिन अली(अ), का बलिदान तथा उनके साथ उनके साथियों और सैनिकों को मुहर्रम महीने की दसवीं तिथि 61वें क़मरी वर्ष (सन् 680 ई.) में यज़ीद बिन मुआविया के सैनिकों और कमाण्डरों द्वारा 'करबला' (इराक़) में पहले कारावास एवं तदुपरांत क़त्ल की याद में शोक मनाया जाता है। सफ़वी एवं क़ाज़ारी शासनकाल में इस नाट्य शैली को राजकीय समर्थन प्राप्त हुआ और इसमें अधिक उन्नति हुई।



क़ाली शूईयान (पारंपरिक शोक नाट्य शैली), इरदहाल, काशान

शोक संतप्त (अज़ादार) लोग समूह में प्रारंभ स्थल से करबला तक सभी रास्तों पर नोहा (शोक गीत) जिसमें करबला में घटित अमानवीय कुकृत्यों पर गायन एवं विभिन्न वाद्यों के वादन के साथ अपना सिर और वक्षस्थल पीटते हैं। क़मी जंजीर तो क़मी ख़ुंजर तथा चाकू से अपने शरीर को आहत करते हैं। इनके अस्त्र-शस्त्र एवं युद्ध संबंधी साज़-सामान से लड़ाई के मैदान का दृश्य उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त वच्चों के ताबूत, तीरों से छिद्रित मश्क़ें, धातुओं के बने पंजे, अंडे, ज़ख्मी घोड़ा तथा इमाम की पालकी आदि भी जुलूस का मुख्य सामान

है। इन सभी का प्रयोग मुख्य घटनाओं के चल-मंचन में होता है जिससे दृश्य में वास्तविकता का रूप झलकता है तथा संपूर्ण वातावरण शोकमय एवं दयनीय हो जाता है। इसलामी इक़लाब के उपरान्त इस जुलूस शोक नाट्य शैली का आयोजन अधिक उत्साह एवं श्रद्धा से प्रत्येक नगर एवं ग्राम में होता है।

इस शैली का द्वितीय पारंपरिक नाटक क़ालीन शूडयान है जो इरदहाल पश्चिमी काशान में मेहर महीने की 17वीं तिथि से पूर्व, शुक्रवार को मंचित किया जाता है। इरदहाल, इमामज़ादे अली(अ) सुलतान अली पुत्र मुहम्मद बार्क़र(अ) पंचम शिआ इमाम का बलिदान स्थल है। इस जुलूस शैली में कुछ शूरवीर पुरुष गुर्ज हाथ में लिये हुए लड़ाई का अभिनय करते 'सुलतान अली' के पुतले को काफ़िरों (सुलतान अली के क़ातिलों) से वापस छान लेते हैं। उसकी लाश को एक क़ालीन में लपेटकर पास की नहर पर ले जाकर नहलाते हैं। तत्पश्चात् उसे प्रार्थनाओं और परंपराओं अनुसार क़ब्रिस्तान में ले जाकर पूर्व निर्मित ज़रीह में रखते हैं। यह नाटक इरदहाल इतिहास की दर्दनाक घटना की याद ताज़ा करने के लिए मंचित किया जाता है। इसमें नाट्य शैली के सभी कारक और तत्त्वों को ध्यान में रखा जाता है।

## 2. कथावाचन नाट्य शैली

कथावाचन नाट्य शैली में कहानी अथवा दास्तान गोई तथा नक्क़ाली की परंपराओं के अनुसार अभिनय, संवाद, गायन, नाट्य मंचन के सभी वस्त्र एवं उपकरण आदि भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों के अभिनयकर्ताओं की आवश्यकतानुसार होते हैं। प्राचीन काल से भाँड, भाट एवं सूत्रधार शहर, देहात, मार्ग, सार्वजनिक स्थल, घर और यहाँ तक कि राजसभा में भी उपस्थित रहते थे। प्राचीन धार्मिक कहानियों और कथाओं को अभिनायक एवं भाँड नाट्य शैली में प्रस्तुत किया करते थे। यह नाटककार सूत्रधार के रूप में कहानी कहने के साथ-साथ वाद्य भी बजाया करते थे तथा कभी बिना वाद्य के भी नाटक प्रस्तुत करते थे। बीच-बीच में पारंपरिक कथाओं का वाचन भी निरंतर जारी रहता था। सूत्रधार कहानी को आगे बढ़ाने में मुख्य पात्र का अभिनय करता था। लोगों से मेहनताना वसूलने का कार्य अकेले या साथियों की सहायता से करता था।

स्वांगी, भाट, भाँड अथवा सूत्रधार ईरान में 'नक्क़ाल' के नाम से प्रसिद्ध हैं और सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक, कलात्मक और हास्यास्पद दायित्वों को विशेषतः पूरा करते हैं। यह लोगों को अपने मनोरंजक प्रदर्शन द्वारा व्यस्त रखते थे। अंतराल में पारंपरिक, राष्ट्रीय और धार्मिक नायकों की कहानियाँ आकर्षक शैली में लोगों को सुनाते थे। इस माध्यम से वह नैतिक और धार्मिक शिक्षा देने का प्रयास करते थे तथा ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक घटनाओं को दोहराते थे। ईरान में इन नक्क़ालों के लिए कला प्रदर्शन के सबसे अच्छे नाट्य स्थल क़हवेख़ाने (चाय-घर) होते थे। कहा जाता है कि कहानियाँ और कथाएँ कहने वाले क़हवेख़ानों में अपनी कहानियाँ कहते थे और इस कला में वह अनुभव और दक्षता रखते थे। इनके समूहों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है : (1) शाहनामा महाकाव्य की कहानियाँ और कथाएँ कहने वाले, (2) ऐतिहासिक कथाएँ कहने वाले, जैसे सिकंदरनामा, तथा (3) ऐतिहासिक घटनाएँ या धार्मिक कहानियाँ कहने वाले जैसे, हमज़ानामा।

नक्कालों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : (1) गैर-धार्मिक, तथा (2) धार्मिक। गैर-धार्मिक विषयों के स्रोत, जैसे शाहनामा, हजार-ओ-यक शब, सिकंदरनामा, समक अय्यार आदि कथाओं के सार होते हैं। गैर धार्मिक नक्काली का मुख्य स्रोत शाहनामा रहा है। नक्काल शाहनामा की कथाओं का अपने कुशल अभिनय द्वारा प्रभावशाली मंचन करने में सफल रहते हैं और लोगों की भावनाओं को प्रभावित एवं उत्तेजित करते हैं। यह लोग शाहनामा को एक धारावाहिक के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

ईरान में धार्मिक विषयों पर नक्काली करने वाले कुछ मुख्य समूह हैं : मनाकिब खानी, फ़ज़ाईल खानी, हमले खानी, परदे खानी और रोज़े खानी। यह सभी समूह धार्मिक स्रोतों से विभिन्न घटनाओं को आधार बनाकर लोगों को अभिनय-कथा के रूप में सुनाते हैं। फ़ज़ाईल खानी केवल सुन्नी लोगों के लिए तथा शेष सभी शिआ लोगों के लिए हैं। ईरान में मनाकिब और फ़ज़ाईल खानी दोनों शिआ शासन के स्थापित होने के पश्चात् विलुप्त हो गये हैं। महज़ूब के अनुसार मनाकिब खानी दूसरी विधाओं के अस्तित्व में आने के बाद भी एक महत्वपूर्ण नाट्य समूह है। शोधानुसार, हमले खानी शैली में ऐतिहासिक, राष्ट्रीय, धार्मिक तथा महाकाव्यों में निहित विषयों के सारांश को नाट्य रूपांतर द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस शैली के प्रमुख नाटकों में मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी खान बाज़ल द्वारा लिखित 'हमले हैदरी' और मुल्ला बमान अली राज़ी किरमानी द्वारा लिखित 'हमले हैदरी' अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

परदे खानी या शमाईल खानी शिआ मत संबंधी धार्मिक विषयों पर आधारित नक्काली है। इसी शैली की ताज़ियों के प्रदर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। परदे खान या परदेदार वह नक्काल होता था जो एक परदे पर पैगंबरे-इसलाम, उनके परिवारजन और उनके जीवनचरित का चरित्रांकन करता था। यह लोग प्रायः पैगंबर और मासूमान की मुखाकृति, जो इसलामी नियमानुसार प्रतिबंधित है, को चाँद के रूप में बना देते थे तथा घटनाओं की नक्काली क्रमानुसार करते थे।

'रोज़े खानी' प्रारंभिक काल में केवल धर्म संबंधी, विशेषतः शिआ मत के विषयों पर आधारित थी। इसके विषयाधार मुल्ला हुसैन वायज़ काश्फ़ी (मृ. सन् 1270 हि.श.) की प्रसिद्ध पुस्तक 'रोज़तुश शोहदा' से उद्धृत रहे। शनैः-शनैः यह शैली सीमित नक्काली वर्ग से निकलकर धार्मिक शिक्षालयों में पाठ्यक्रम का भाग बन गई और आज एक प्रमुख विषय का रूप धारण कर चुकी है। लेकिन हमले खानी और परदे खानी सीमित वर्ग में सिमटकर केवल इतिहास का भाग बनकर रह गई हैं।

वर्तमान समय में इसलामी सांस्कृतिक मंत्रालय के अंतर्गत कुछ अध्यापकों और छात्रों ने नाट्य संस्थाओं की स्थापना की है ताकि स्थानीय एवं लोक नक्काली शैलियों को संरक्षण प्रदान किया जा सके। इन नक्काली शैलियों में बहराम बेज़ाई द्वारा रचित 'कारनामा-ए-युंदार बीदाख़्श' (सन् 1998 ई.) तथा निज़ामी गंजवी की मसनवी से उद्धृत 'शीरी-फ़रहाद' जिसे परवेज़ ममनून (सन् 1998 ई.) ने संपादित किया, उल्लेखनीय हैं। यह दोनों नक्काली तेहरान के नगर-नाट्यघरों में प्रस्तुत की गई।

### 3. कठपुतली नाट्य शैली

ईरान के कुछ कवियों ने अपने काव्य संग्रह में कठपुतली से संबंधित कुछ तकनीकी वाक्यांशों का प्रयोग किया है जिनमें सबसे प्रसिद्ध उदाहरण कवि खूय्याम की रुवाई है :

मा लावतकानीम ओ फ़लक लावत मजाज़  
अज़ रूप हकीकती, न अज़ रूप मजाज़  
बाज़िये हमी क़ुनीम वर नतए-बुजुद  
रफ़तीम वे संतूक़े-अदम, यक यक बाज़  
(कठपुतलियाँ हैं हम और आकाश कठपुतलीबाज़  
सच में, कल्पना में नहीं  
बनाते हैं खिलौना हम इस चमड़ी के अस्तित्व में  
शून्य की ओर जाते हैं हम एक-एक कर के)

यह कठपुतली नाट्य शैली न केवल ईरान में बल्कि दुनिया के बहुत से क्षेत्रों में प्रचलित रही है। इसका इतिहास बहुत प्राचीन है। ईरान की कठपुतली नाट्य शैली को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : (1) कठपुतली प्रतिविंब (छाया खेल पद्धति), और (2) ख़ेमे-ए-शबवाज़ी (कठपुतली पद्धति)।

पहले में कठपुतली पर प्रकाश डालकर उसकी परछाई को परदे पर दर्शाया जाता है और कठपुतलीबाज़ छाया संचालन से अपना खेल दिखाता है। इन्हें छायाखेल या ख़यालवाज़ी और अरबी भाषा में 'ख़याल उज़ ज़िल' कहा जाता है।

'ख़ेमे-ए-शबवाज़ी' में धागे से बँधी कठपुतलियों को धागों से संचालित कर मनचाही अवस्था में नचाया जाता है। धागे के स्थान पर कभी-कभी सरकंडे का भी प्रयोग किया जाता है। ख़ेमे-ए-शबवाज़ी नाट्य शैली संगीतमय है। इसके साथ गीत और संगीत दोनों चलते हैं तथा संगत के लिए कमांचा (तात वाद्य) और ज़रब (ताल वाद्य) का प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी इनमें कोई कथा या कहानी के लयात्मक वृत्तांत का वर्णन भी किया जाता है। अधिकांश वृत्तांत कथा साहित्य से उद्धृत होते हैं, जैसे पहलवान कचल, सुलतान सलीम आदि। कुछ हास्य कहानियाँ भी होती हैं, जैसे सियाह, अरुस, मादर ज़न और ताजिर आदि। प्रायः यह तमाशे कहवेख़ानों तथा गली-कूचों के नुकड़ पर सूर्यास्त के उपरांत प्रदर्शित किए जाते हैं। कभी-कभी लोगों की माँग पर विशेष उत्सवों या समारोहों में भी कठपुतली का खेल दिखाया जाता है।

यद्यपि इसलामी इंक़लाब पूर्वकाल में नाट्यकला महाविद्यालय, तेहरान में ही कठपुतली नाट्यघर का स्थापन कार्य प्रारंभ हुआ था परंतु इसलामी इंक़लाब के बाद यह कार्य न केवल संपन्न हुआ बल्कि एक स्वतंत्र स्नातक पाठ्यक्रम उच्चशिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय की स्वीकृति उपरांत शुरू हुआ। इस प्रकार के पाठ्यक्रम का उद्देश्य

सांस्कृतिक धरोहर का संरक्षण तथा इस कला को समाज में जीवंत बनाए रखना था। कठपुतली कला केवल शिशुओं के लिए ही नहीं अपितु यह शैली प्रौढ़ लोगों की ज्ञान वृद्धि के लिए भी प्रयुक्त होती है। इस महाविद्यालय से उत्तीर्ण अनेक छात्रों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयोग किए हैं। इसी महाविद्यालय के छात्र करीम सईदयान का कठपुतली नाटक 'आदम-ता-आदम' बहुचर्चित एवं प्रसिद्ध रहा है। सन् 1989 ई. तथा सन् 1996 ई. में इसी महाविद्यालय ने अंतर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह भी आयोजित किए जिनके कारण इस महाविद्यालय को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई।

खुमे-ए-शववाजी अर्थात् लोक कठपुतली शैली के प्रदर्शन प्रायः कहवेखानों में आयोजित होते हैं। उस्ताद असगर अहमदी द्वारा रचित कठपुतली नाट्य प्रायः सांस्कृतिक कहवेखाने आजरी में प्रदर्शित होते रहे हैं। इस क्षेत्र में भी नई तकनीक और उपायों का प्रयोग होने लगा है। इस शैली की सबसे प्रमुख कृति नुसरत अल्ला करीमी की 'अरुसक सुखन गूयी' (बोलने वाली गुड़िया) है।

सन् 1981 ई. में कठपुतली नाट्य शैली का प्रसिद्ध नाटक 'मेहमाने-नाखादे', पारके-लाले में मंचित हुआ। इससे पूर्व रचनाबद्ध संगीत व नाटक शैली पर आधारित नाटक 'शहरे-फ़िस्ते' (सन् 1969 ई.), 'माह-ओ-पलंग' (सन् 1969 ई.) और 'ज्ञान निसार' (सन् 1973 ई.) में मंचित हुए। 'शहरे-फ़िस्ते' नाटक पात्रों के पशु रूप में अभिनय द्वारा खेला जाता है। यह संगीतमय है और ईरान में बहुत सफल हुआ। इसलामी इंकलाव के उपरांत रचित एवं मंचित अन्य प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय नाटकों में आज़ीता हाजियान द्वारा रचित 'आन सूईए आइन' (शीश के उस तरफ), बरूमंद रचित 'मदरसे-मूशहा' (चूहों की पाठशाला), बहरामशाह मुहम्मद द्वारा ब्रेल शिक्षा पद्धति पर आधारित 'वरून अफ़कनी', बहरूज गरीब परवर द्वारा शिशु पालन एवं शिक्षा प्रोत्साहन के लिए रचित 'सफ़रे-सब्ज़ दर सबज़' जिसे सर्वप्रथम इस्फ़ाहान में प्रदर्शित किया गया तथा जवाद जुल्फ़िकार का बाल शिक्षा के क्षेत्र के लिए उपयोगी 'हिमासे-ए-बुजे-जंगूले पा' आदि कठपुतली नाटक हैं। शिक्षाप्रद कठपुतली नाटकों के अतिरिक्त हास्य एवं कटाक्ष शैली में रचित प्रसिद्ध नाटकों में गुलाम हुसैन साइदी की रचनाएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनका कठपुतली नाटक 'चश्म दर बरावरे चश्म' (आँख के सम्मुख आँख) लोक कथाओं पर आधारित है तथा यह अत्यंत लोकप्रिय कठपुतली नाटकों में से है। इसे इसी नाम से कामबीज समीमी मुफ़ख़म ने मंचन योग्य रूपांतर में प्रस्तुत किया। विवाह योग्य कन्याओं के लिए आवश्यक पारिवारिक शिक्षाओं पर भी हास्य एवं शिक्षाप्रद कठपुतली नाटकों की रचना इसलामी इंकलाव के उपरांत हुई। इनमें प्रमुख यदुल्लाह क़ादारी द्वारा रचित 'आरज़ूहाए बुजुर्ग' (बड़ी अभिलाषाएँ) है। इसमें परिवार के विभिन्न सदस्यों के आपसी सौहार्दपूर्ण संबंधों को प्रदर्शित किया गया है तथा किस प्रकार कटु एवं अनुचित प्रथाओं का सामना कन्या वर्ग को करना पड़ता है, उसका प्रदर्शन भी इसमें सम्मिलित है।

#### 4. शोक नाट्य शैली (ताज़ियती नाट्य शैली)

ताज़िया अर्थात् शोक प्रकटन की पारंपरिक धार्मिक नाट्य शैली है। इसके मुख्य तत्त्व और कारक कष्ट, यातना, दुःख, ग़म और भय हैं। यह संत्रास पैगंबरो, निरीह लोगों, इमामों और धर्म के मार्गदर्शकों को धर्म विरोधी लोगों के दुष्कर्मों के कारण वहन करना पड़ा। 'नुमाइशे-ताज़िये' (शोक नाट्य) हर वर्ष उन पैगंबरो, इमामों और

धार्मिक विभूतियों की अच्छाइयों, सद्गुणों के स्मरण और प्रशंसा में मंचन किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, मिस्त्र के फ़िरओन कालीन 'ताज़िये इबोदूस' जिसमें फ़रिश्ता इज़रूस की मृत्यु एवं प्रलय-नाथा नाट्य रूप में प्रस्तुत की जाती थी। इसी प्रकार ईसाई लोग भी ईसा को सलीब पर चढ़ाते हुए नाट्य रूप में दिखाते हैं। जैक वॉन अनुसार इस कृत्य को प्रत्येक वर्ष जर्मनी के 'ज़बिग मग गबा' थियेटर में मंचित किया जाता है।



नुमाइश-ताज़िया

प्रमुख नाटक आलोचक चैल्कोवस्की के अनुसार ईरानी ताज़िया शैली में कष्ट एवं दुःखों की आंतरिक एवं बाह्य व्यथा का संपूर्ण तथा सफल चित्रण होता है। यह ईरानी शिआओं की देन है तथा इन्हीं के प्रयासों से यह नाट्य शैली उन्नत एवं विकसित हुई है। ईरानी ताज़िया नाट्य शैली की मुख्य विषय वस्तु में पैगंबर मुहम्मद के धेवते-ज़हरा के सुपुत्र-इमाम हुसैन, उनके निकट संबंधियों एवं सहयोगियों पर किए गए अत्याचारों का वृत्तांत है। इसके अतिरिक्त विषयवस्तु में अन्य पैगंबरों पर हुए अमानवीय अत्याचारों का वृत्तांत भी यदा-कदा शामिल होता है। इनमें हज़रत इब्राहीम, हज़रत अयूब, हज़रत नूह, हज़रत सुलेमान तथा हज़रत ईसा संबंधी घटनाएँ मुख्य हैं। इनमें जीवनवृत्त के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का वृत्तांत भी दर्शनीय होता है।

यह नाट्य शैली प्रायः धारावाहिक और संगीतमय होती है। इसका नायक प्रायः सद्गुणी होता है और जुल्म सहता है। खलनायक जुल्म-ओ-सितम करता है। नायक की वेशभूषा हरे, काले अथवा सफ़ेद रंग की और खलनायक के वस्त्र लाल रंग के होते हैं। महिलाओं का पात्र पुरुष निभाते हैं और काली वेशभूषा धारण करते हैं। नायक पथ में और खलनायक गद्य में संवाद करते हैं। इस नाट्य शैली का मंचन मंच पर ही होता है। विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ जिनमें अलम (पताका), तलवार, जलपात्र आदि मंच पर बिखरी हुई अवस्था में रख दिए जाते हैं। विभिन्न वाद्यों, जैसे शैपूर, ढोल, रणभेरी, तबल, ताशा, घूषा आदि के वादन से शोकमय वातावरण हर ओर छा जाता है। इसी के साथ छाती पीटने का कृत्य तथा दर्शकों का शोक भी इस नाट्य शैली को यथार्थ एवं वास्तविक रूप प्रदान करने में सहयोग देता है। कृत्रिम मंच के अतिरिक्त इस नाट्य शैली के मंचन-स्थल स्थानीय हुसैनिए (भारत में इमामवाड़े) तथा तकिए होते हैं।

इस ताज़ियती अर्थात् शोक नाट्य शैली का प्रारंभ क़ाज़ार शासनकाल (सन् 1797-1925 ई.) में हुआ तथा इसी वंश के बादशाह नासिरुद्दीन शाह क़ाज़ार (सन् 1848-1896 ई.) के काल में इस शैली के नाट्य प्रदर्शन अपने उत्कर्ष पर थे। प्रारंभिक काल में इस शैली के नाटक पूर्णतः नाटक पद्धति के न होकर केवल जनता-जनार्दन में

धार्मिक भावनाओं को प्रेरित करने का माध्यम थे। परंतु नासिरुद्दीन शाह के काल में अभूतपूर्व राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में यह अर्द्ध नाटकीय शैली भी पूर्णतः नाटक शैली में परिवर्तित होकर एक स्वतंत्र नाटक शैली के रूप में उभरी। इसकी विषय वस्तु का आधार मूलतः धार्मिक ही नहीं लेकिन सभी अन्य सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक एवं कलात्मक पहलू भी इस शैली के नाटकों के मुख्य तत्त्व बन गए। इस नवीनीकरण ने इस शैली को यूरोपीय नाटकों की शृंखला में ला खड़ा किया।

जहांगीरियान के अनुसार सावा (ईरान का एक शहर) में चार नाट्य समूह इस शैली के नाटकों का मंचन करते हैं। सावा शहर में इस शैली के नाटक मुख्यतः चहल बावे तकिफ नामक नाट्य-स्थल पर प्रदर्शित किए जाते हैं।

रज़ाशाह पहलवी (सन् 1925-1941 ई.) के काल में इस शैली को अत्यंत हतासाहित होना पड़ा। राजकीय संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त न होने पर भी ताज़ियती नाट्य प्रथा जारी रही। मुहर्रम मास में विशेषतः इस शैली के नाटक ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में आयोजित होते थे। रज़ाशाह अपनी सभी कोशिशों के बावजूद इन पर रोक न लगा सका। मुहम्मद रज़ाशाह (सन् 1941-1979 ई.) के काल में उदारवादियों के प्रयत्नों से इस सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण के कुछ कार्यक्रम कार्यान्वित हुए। राजकीय संरक्षण के साथ इस विषय पर अनुसंधान भी प्रारंभ हुए। कुछ यूरोपीय तथा अमरीकी विशेषज्ञों ने इस दिशा में ठोस कार्य किए। तेहरान तथा अन्य नगरों में ताज़ियती नाटकों का मंचन प्रारंभ हुआ। वर्तमान इसलामी शासन में इस शैली को विशेष राजकीय संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त है। प्रत्येक वर्ष विभिन्न नगरों में इस शैली के महोत्सव आयोजित किए जाते हैं। इस शैली को कला महाविद्यालयों में एक पाठ्यक्रम विशेष का स्तर प्राप्त हुआ है ताकि इस सांस्कृतिक धरोहर को आने वाली पीढ़ी के लिए जीवित रखा जा सके।

इसलामी सांस्कृतिक मंत्रालय के तत्वावधान में कुछ नाट्य समूह वर्षभर इन ताज़िये नाटकों को मंचित करते हैं। उदाहरणतः 'ताज़िये दर सावे' की ओर संकेत किया जा सकता है जिसे जहांगीरियान ने सन् 1377 श. (सन् 1998 ई.) में लिखा और इसे मुहर्रम या कभी-कभी रमज़ान के महीने में मंचित किया जाता है। इस समय इन पारंपरिक नाटककारों की संख्या बढ़ गई है, जैसे 'हाशिम फैयाज़' जो इस नाट्य संस्था से उभरे हैं। उन्होंने प्रयत्न किया है कि इन शोक नाटकों को एक नई तकनीक और चेहरे के साथ प्रस्तुत किया जाए। इसके तीन प्रमाण हैं : 1. 'मुस्लिम बिन अक़ील', महमूद अज़ीजी द्वारा लिखित एवं निर्देशित, 2. 'कूचे नूर' हुसैन जाफ़री द्वारा लिखित एवं निर्देशित (सन् 1998 ई.), तथा 3. 'यादगार सालहायेशिन' नसरुल्ला क़ादरी द्वारा लिखित एवं निर्देशित। इसी तरह दूसरे नाटककारों ने, जैसे सैयद मेहदी शुज़ाई ने 'ख़ार-ओ-दिल' लिखा। इसी दिशा में बहराम वीज़ाई द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'रोज़े वाक़े' भी प्रमुख है। पिछले दो दशकों में बहुचर्चित नाटक हैं : 1. 'वांग ज़िरस' ताजवज़्ज़ा फ़नाइयान द्वारा रचित, तथा 2. 'ज़नाने-सहर मर्दाने-शतीला' (सन् 1998 ई.) कुतुबुद्दीन सादकी द्वारा रचित हैं।

'वांग ज़िरस' इमाम खुमैनी की मृत्यु के संदर्भ में है। 'ज़नाने-सहर मर्दाने-शतीला' फ़िलिस्तीनियों के दो कैम्पों पर हमले और जुल्म की घटनाओं को प्रदर्शित करता है।

## 5. हास्य नाट्य शैली

हास्य नाटकों में उत्साह, हास्य और खुशी भरपूर होती है। प्राचीन समय से ईरान में गविये, जोकर, भाट, भोंड, चारण, जादूगर, नट आदि लोग गली और बाज़ारों, शहरों और गाँवों, लोगों के घरों और राजदरबारों में हास्य एवं व्यंग्य से भरपूर नाटक प्रस्तुत करते रहे हैं। समय की धारा के साथ-साथ इस शैली में नवीन हास्यजनक तथा व्यंग्यात्मक तत्त्व भी शामिल होते गये जिनको वर्तमान में 'कचल्कवाज़ी, बक्कालवाज़ी, रूबंदवाज़ी और सियाहवाज़ी' आदि विभिन्न नामों से जाना जाता है। प्राचीन समय में यह नाटक प्रायः घरों के मध्य स्थित हौज़ अथवा आँगन में एक तख़्त या दीवान के ऊपर दरी या कपड़ा बिछाकर खेले जाते थे। इसलिए इन्हें अलंकृत भाषा में 'रूहौज़ी या तख़्तेहौज़ी' भी कहा जाता है। नाटक आलोचक गुफ़फ़ारी कचल्कवाज़ी, बक्कालवाज़ी और रूबंदवाज़ी के बारे लिखते हैं कि 18वीं शताब्दी ई. में नाट्यकारों के समूह क़हवेख़ानों या घरों में शादी-विवाह, जन्म, ख़तने आदि के अवसरों पर इन हास्य नाटकों को मंचित करते थे। 18वीं शताब्दी ई. के मध्य (सन् 1750 ई./सन् 1179 हि.क.) इन नाटकों में एक गंजा आदमी अभिनय करता था। इसी कारण इन नाटकों का नाम 'कचल्कवाज़ी' पड़ गया क्योंकि फ़ारसी में कचल का अर्थ गंजा होता है। कचल्कवाज़ी शैली में प्रायः नौदौलतियों, धनलोलुपों, विशेषतः जो दूसरे की पूँजी पर गिद्धदृष्टि रखते हों, या उन लोगों का मज़ाक़ उड़ाया जाता है जो चरित्रवान स्त्रियों को हवस का शिकार बनाना चाहते हों। इस शैली में कुछ वर्ग विशेष की बुरी आदतों का अच्छा-खासा मज़ाक़ उड़ाया जाता है।

कंज़ूस अथवा कृपण लोगों को व्यंग्यात्मक परिभाषा में बक्काल (बनिवा) कहा जाता है। इनकी कृपण प्रवृत्ति पर व्यंग्य करने के लिए 'बक्कालवाज़ी' अस्तित्व में आई। 'रूबंदवाज़ी' भी हास्य की एक पारंपरिक शैली है। इसमें पात्र अपने चेहरों पर मास्क लगाकर और लंबे चोगे पहनकर लकड़ी के ऊँचे पैरों पर चलते हैं। सन् 1987 ई. तक गुलपायगान में रूबंदवाज़ी के कई प्रदर्शन आयोजित हुए। 'सियाहवाज़ी' हास्य नाट्य शैली में पात्र का चेहरा काला, आँखें बड़ी-बड़ी, होंठ मोटे और लाल रंग के तथा कपड़े आगे से चोगे के आकार में लटकते रहते हैं। वह अपने अभिनय द्वारा अपनी व्यापारपूर्ण आत्मकथा को हास्य के माध्यम से लोगों तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है। वास्तव में यह व्यथा पुरातन कालीन दास लोगों की अवस्था का प्रतिबिंब है। वह दास प्रायः हथ्शी अथवा एशियाई देशों से ख़रीदकर लाए जाते थे। इस शैली में उन्हीं का रूप धारण कर वह अपने कृत्यों द्वारा हास्यमय वातावरण बनाने का प्रयत्न करता है। इन सियाहवाज़ी नाटकों का कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता लेकिन फिर भी 'बक्कालवाज़ी दर हुज़ूर' जिसे सैयद अली नसर ने सन् 1317 श. में लिखा था, नासिरुद्दीन शाह की राजसभा में खेला गया। बक्कालवाज़ी उपशैली के एक अन्य नाटक 'शरही अज़ बदवख़्ती' के प्रमाण मिलते हैं।

अली नुसरीयान ने सन् 1340 श. में 'सियाह' नामक नाटक लिखा और सन् 1961 ई. में उसे 'मुरवारीद' नामक नाट्य संस्था में प्रस्तुत किया गया। यह एक शोक नाटक है। इसके मुख्य पात्र का बुरा अंत होता है। एक हाजी के तहख़ाने में अपनी बारी की प्रतीक्षा करते हुए वह सो जाता है। सपने में परीयान राजा की लड़की जो एक तिलमस के राक्षस की कैदी है, उसके पास जाती है और उससे मुक्त होने में सहायता माँगती है। कहती है कि इस शीशे को तोड़ देने से वह राक्षस मर जायेगा और वह मुक्त हो जायेगी। इसी बीच सियाह जाग जाता

है। परी उसे इतनी शराब पिलाती है कि वह गहरी नींद में सो जाता है। जब परीयान राजा की लड़की के साथी उसे अपना कार्य अंजाम देने के लिए बुलाने जाते हैं तो पाते हैं कि वह मौत की गहरी नींद में सो चुका है।

वर्तमान काल में 'इस्लामी सांस्कृतिक मंत्रालय' ने नाट्य शैली की नियमावली तथा उसके स्तर का निर्धारण किया है। हास्य शैली के नाटकों को भरपूर संरक्षण प्राप्त है। तेहरान और अन्य शहरों में नाट्य मंचन के लिए उचित थियेटरों का निर्माण भी किया गया है। इसका महत्वपूर्ण उदाहरण तेहरान में सियाहवाज़ी नाट्य संस्था, 'साअदुल्लाह ज़हमत खान' उर्फ़ सादी अफ़शार के द्वारा सियाहवाज़ी शैली के नाटक, लाला ज़ार स्थित 'थियेटर नसर' में प्रदर्शित किए गए हैं। दूसरी नाट्यशाला, 'गुलदीस' जो तेहरान में स्थित है, इन हास्य नाटकों को माँचत करती है। वर्तमान में हास्य नाटककार 'मनुचहर नूजरी' प्रसिद्ध है। 'सादी अफ़शार' नाट्य रचयिता ने एक नाट्य अभिनेता, 'दाऊद फ़तह अली बेगी' की सहायता से प्राचीन लोक कथाओं पर आधारित हास्य नाटकों का निर्माण किया है। इन्हीं में 'सुलतान मुवदल' (सन् 1987 ई.) 'मेहराब थियेटर' में प्रस्तुत किया गया है।

## 6. पश्चिमी (यूरोपीय एवं अमरीकी) नाट्य शैली

जय यूरोप में दर्शन, विज्ञान, तकनीकी विज्ञान, मानव विज्ञान, ललित कलाएँ तथा साहित्य में अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहे थे, ईरान अचानक जाग्रत हुआ। लेकिन इस जागृति के काल में तत्कालीन तीन साम्राज्यवादी महाशक्तियों—रूस, इंग्लैंड तथा फ़्रांस—ने ईरान को आंतरिक एवं बाह्य दोनों मोर्चों पर घेर रखा था। फ़तह अली शाह के काल (सन् 1797-1834 ई.) में रूस ने ईरान पर दो बार आक्रमण किया और प्रत्येक बार ईरान की भूमि का विशाल भाग हड़प लिया। इसी तरह मुहम्मद शाह क़ाज़ार और नासिरुद्दीन शाह क़ाज़ार के काल में इंग्लैंड ने ईरान पर कब्ज़ा कर लिया और अफ़ग़ानिस्तान जो कि ईरान का हिस्सा था उसे स्वतन्त्र देश बनवाया। इस बीच दरबार से बाहर देशहित में समाज के सांस्कृतिक और राजनीतिक विचारकों ने पिछड़ेपन, बेचारगी को देखकर अपनी आँखें खोलीं और प्रयत्न किया कि ईरान के लोग, यूरोप की उन्नति, विद्या, ज्ञान, कला और उन्नतशील विचारों से जानकारी प्राप्त करें और बराबर प्रयत्नशील रहें कि उनके देशवासी यूरोप की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक उन्नति से जुड़े रहें।

क़ाज़ारी युग के प्रारंभिक काल में विभिन्न विषयों में ज्ञान अर्जित करने हेतु कुछ छात्र एवं शोधकर्ता यूरोप, विशेषतः फ़्रांस भेजे गए। विदेशों से सीखकर आए ईरानियों ने विभिन्न यूरोपीय कलाओं के ज्ञान का प्रसार ईरान में किया। अपने अनुभवों के संबंध में सफ़रनामे संकलित किए। इन सफ़रनामों में अन्य नवीन यूरोपीय विषयों की जानकारी के साथ-साथ नाट्यशालाओं का भी विवरण दिया गया है। ईरान में प्रथम नाट्य लेखक के रूप में स्वीकृत मिर्ज़ा आग़ा तबरेज़ी ने स्मृतियों को पद्यात्मक रूप प्रदान किया है। मिर्ज़ा आग़ा ऐसे प्रथम नाट्य लेखक हैं जिसने फ़ारसी साहित्य में थियेटर शब्द का प्रयोग किया। कुछ अंतराल के उपरान्त यह शब्द शब्दकोश का भाग बन गया। सन् 1815 ई. में यूरोपीय साहित्य, ललित कला तथा नवीन विषयों की शिक्षा हेतु तेहरान में तत्कालीन वज़ीर (प्रधान मंत्री) अमीर कबीर के प्रयास से दारुल फ़ुनून नामक संस्था की स्थापना की गई। इस संस्था में विज्ञान, संस्कृति एवं कला संबंधी पुस्तकों के अनुवाद एवं मुद्रण के अतिरिक्त एक नाट्यशाला का भी निर्माण

किया गया। इसमें लगभग 200 कलाकारों को एकत्रित किया गया। इसी नाट्य संस्था में नाट्य कला के अध्यापक लुमर क्रांस्ती, अली अकबर मजीनुद्दौला और नक्काश वाशी कार्यरत थे। इसे यूरोपियन शैली की नाट्य शाला के रूप में स्थापित किया गया। दारुल फुनून के थियेटर में मंचित नाटकों के विषय में लिखा गया है कि "वहाँ पर मंचित नाटकों में से अरूस इजवारी, तयीवी इजवारी, तंफ़र अज़ मरदुम, ख़र, तुरश अली बेग और हंस पीनेदूज़ सभी विदेशी भाषाओं के फ़ारसी रूपांतर हैं।"

यूरोपीय नाट्य शैली के लिए आवश्यक संसाधनों एवं उपकरणों के अभाव तथा नाट्य ज्ञान की संपूर्ण जानकारी से वंचित तत्कालीन कलाकार बादशाह की नाट्य संबंधी अभिलाषाओं को पूरा नहीं कर सकते थे। इसका दुष्परिणाम अंततः मिर्ज़ा अली अकबर खान मुज़िबनुद्दौला को भुगतना पड़ा। नासिरुद्दीन शाह के काल से मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह क़ाज़ार के संविधान समर्थकों के समक्ष समर्पण उपरांत (सन् 1846-1906 ई.) तक मुख्यतः दो शैलियों में नाटक लिखे गए : (1) हास्य नाट्य शैली : इस शैली के नाटक सदैव राजाओं के लिए मंचित किये जाते थे। (2) ऐतिहासिक, सामाजिक और आलोचनात्मक नाट्य शैली : इसे समाज के नये विचार के लोगों ने स्थापित किया। इसमें मोलियार (सन् 1622 से 1673 ई.), नीकला गोगूल (सन् 1809 से 1852 ई.) और मिर्ज़ा फ़तह अली आख़ुंदज़ादे के नाटकों के अनुवाद शामिल हैं। आख़ुंदज़ादे ईरानी था लेकिन कालांतर में रूस का निवासी हो गया। वह क़फ़क़ाज़ में रहता था और उसने तुर्की और आज़री भाषा में छः हास्य नाटक लेखनीयद्ध किए : फ़सादे-दस्तमाह-हाये-इदारी, ब-बाज़े दस्तगाहे-क़ज़ायी, इस्तबदाद-ओ-ज़ोर गूयी-ए-हैयते-हाकिम, रिवाजे-ख़ुराफ़ात और किशरगीरी और सानुसगीरी-ए-चीनी। यह सभी नाटक राजतंत्र के विभिन्न विभागों की विगड़ी हुई कार्य प्रणाली पर तीव्र कटाक्ष युक्त व्यंग्यात्मक नाटक हैं। इनमें मिर्ज़ा आगा तबरेज़ी द्वारा यूरोपियन शैली में रचित प्रथम नाटक (लगभग 120 वर्ष पूर्व), मिर्ज़ा मलक़्म खान (सन् 1833 से 1908 ई.) का तत्कालीन राजनीतिक ढाँचे पर संवाद शैली में लिखा नाटक 'रफ़ीक़-ओ-वज़ीर' है। इसी प्रकार मिर्ज़ा आगा ख़ान किरमानी (सन् 1853 से 1896 ई.) का 'सूसमारुद्दौला' और मुर्तज़ा कुली फ़िकरी (सन् 1868 से 1917 ई.) का प्रसिद्ध नाटक 'हुक्कामे-क़दीम', 'हुक्कामे-जदीद' (सन् 1294 श./1915 ई.) जो सैवैधानिक क्रांति की सफलता के लगभग दस वर्ष पूर्व रचा गया, आदि सभी नाटक आख़ुंदज़ादे की नाट्य लेखन शैली पर आधारित हैं।

क़ाज़ार शासनकाल के अंतिम दौर के कुछ नाटककार जिनकी रचनाएँ जागृति एवं प्रगति की प्रतीक मानी जाती हैं, उनमें अहमद कमाल-उल-वज़ारे महमूदी (सन् 1875-1931 ई.), उस्ताद नौरूज़ पीनेदूज़, ज़वीह बेहरूज़ (सन् 1891 से 1971 ई.), ज़ीजक अली शाह (सन् 1923 ई.) तथा हसन मुक्कदम (सन् 1899 से 1925 ई.) की रचनाएँ बहुचर्चित नाटकों में हैं। उपरोक्त लेखकों के नाटक गंभीर, सादा, आलोचनात्मक तथा व्यंग्यात्मक हैं और राजनीतिक, सामाजिक और ईरानी संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं। फ़ारसी साहित्य के नाट्य लेखन इतिहास में यह काल अनेक मूल्यवान तत्त्वों का परिचायक है। आगामी वर्षों में नई धारा की शैली में लिखे गए नाटकों के लिए यह काल मार्गदर्शक बना।

ईरान की यूरोपियन नाट्य शैली का एक और प्रसिद्ध नाटककार, रज़ा कमाल शहरज़ाद (सन् 1277-1316 श.) है। रज़ा कमाल फ़्रांसीसी भाषा और संगीत शास्त्र का प्रबुद्ध ज्ञाता था। उसने कुछ क़फ़क़ाज़ी नाटकों, 'अफ़स्ताने,

इश्क़, असली-ओ-करम, कमरबंद-सहर आमीज़' को फ़ारसी भाषा में रूपांतरित कर ऑपेरा के रूप में प्रस्तुत किया। उसने कुछ फ़्रांसीसी नाटकों का भी फ़ारसी में अनुवाद किया। लेकिन रज़ा शाह की तानाशाही सरकार ने कला और ललित कलाओं पर अनेक प्रतिबंध लगाकर इनकी उन्नति को अवरुद्ध कर दिया। रज़ा कमाल और उसके चार अन्य नाटककार दोस्त रज़ा शाह सरकार के अत्याचारों से तंग आकर कला की छोड़ने पर विवश हो गये और उन्होंने आत्महत्या करने का निर्णय ले लिया। उनमें से एक-एक ने धीरे-धीरे इस निश्चय को वास्तविक रूप देकर आत्महत्या कर ली। मुहम्मद तकी बहार (मलिकुश शोअरा) ने 'ऑज़ंद' में शोकमय अंदाज़ में लिखा है :

“शहरज़ाद अज़ ज़हान बेरुप्त के वृद्ध

सीर अज़ ईन मेज़बान ओ माहज़रश”

(शहरज़ाद उसी लोक में चला गया जहाँ का वह था

हुआ यहाँ के अतिथेय एवं उपस्थितजनों से तृप्त)

सन् 1925-1956 ई. तक का समय नाट्यकला के लिए अति अंतःस्पर्शी, गंभीर तथा देशहित का युग रहा है। गुरीगबर यकीफ़ियान (सन् 1880-1951 ई.) ने अपना ऐतिहासिक नाटक 'जंगे-मशरिक-ओ-मगरिव' लिखा, जिसका कथासार सिकंदर मक़दूनिया का ईरान पर आक्रमण और हिख़ामश्री शासक दारवूश तृतीय की पराजय संबंधी ऐतिहासिक घटनाओं की पुनरावृत्ति पर आधारित है। यह एक राजनीतिक नाटक है। इस काल में तेहरान और अन्य शहरों में नाट्यशालाएँ स्थापित हो गई थीं। इन कंपनियों के द्वारा तैयार किए गए नई शैली के नाटक महानगरों में मंचित होने लगे। कुछ समय पश्चात् सैयद अली नसर (सन् 1891-1962 ई.) के प्रयास से ईरान में प्रथम नाट्य संस्थान की स्थापना हुई। यह नाट्य विज्ञान एवं नाट्य लेखन की उन्नति में एक महत्वपूर्ण सकारात्मक कदम था।

मुहम्मद अली सिपानलू के अनुसार सन् 1320 श. (सन् 1941 ई.) में रज़ा शाह के त्यागपत्र के बाद ईरान में नाटककारों के अनुकूल वातावरण पैदा हुआ और कुछ उत्तम नाटक लिखे गये। इनमें अब्दुल हुसैन नूशीन द्वारा लिखित नाटक 'ख़रू-ए-सहर' गोरकी की रचना 'दुश्मनान' पर आधारित है। स्वदेशी नाटकों में, 'खाकान मी रक्सद', 'जान फ़िदा-ए-ग़तन' और 'अमीर कबीर' उल्लेखनीय हैं। इनमें से कोई भी नाटक छपा नहीं है।

इस समय का सबसे बड़ा नाटककार अब्दुल हुसैन नूशीन था जोकि वामपंथी समर्थित दल 'नूद' से संबंधित था। उसने अनेक यूरोपीय, विशेषतः फ़्रांसीसी एवं रूसी नाटकों का फ़ारसी में अनुवाद कर उनको मंचित किया। इसके लिखे हुए नाटकों से ईरान में यूरोपियन नाट्य शैली की बहुत उन्नति हुई।

बीसवीं सदी के सातवें दशक में नाट्य लेखन और नाट्यकला की प्रगति को सरकारी तंत्र के कठोर शिकंजे के कारण भारी आघात पहुँचा। यह मंदगति आठवें दशक में भी निरंतर जारी रही। इस काल के कुछ लेखकों एवं नाटककारों ने दक्षता प्राप्त की और सफलतापूर्वक नाटकों का मंचन किया। 'मूहिदीयान' के अनुसार, प्रमुख नाटककार जिन्होंने इस काल में अपने नाटकों को छपवाया, इस प्रकार हैं : 'अबू क़ासिम जन्नती अतायी, ज़वीह उल्लाह बेहरूज़, गुलाम हुसैन साएदी, इरसलान पूरीया, अली नसिरीयान, बेहमन फ़ुरसी, बहराम बीज़ायी, अकबर

मादी, खूजस्ते किया, नादिर इब्राहीमी, मुहम्मद अली इसलामी नुदुशीन, मुहसिन यल्कानी, अली रज़ा तबरेज़ी, फ़रीद फ़रज़ाम, इब्राहीम मकी, मुहम्मद शफ़ी रईसी, ईसा हिदायत, अब्बास ज़वान मर्द, अली शुजाईयान, परवेज़ कारदान, नासिर इंगानी, होशंग वाख़्तरी, गुलाम रिज़ा दोस्त मुहम्मदी, मेहरदाद शुकोही, अब्बास नालवंदीयान, सईद पूर समीमी, इब्राहीम रहवर, अब्दुल रहमान सदरीये, बीज़न मुफ़ीद, दाऊद आरिया, महीन तज़दुद, महमूद दौलतावादी, मुस्तफ़ा ख़ोमी, अमीन फ़कीरी, मुहम्मद लली और तहमीने मीर मीरानी। इन्होंने अपने नाटकों द्वारा ईरान की यूरोपियन नाट्य शैली को नया रूप प्रदान किया।

उल्लेखित नाटक लेखकों की सभी रचनाओं को सेंसर से गुज़रना आवश्यक था। इनमें शासन विरोधी कोई भी तत्त्व सम्मिलित नहीं हो सकता था। इस काल में नाट्यकला को कुछ राजकीय संरक्षण तो प्राप्त हुआ लेकिन वही नाटक इस अवसर का लाभ प्राप्त कर सके जो शासन की प्रशंसा में रचे गए। साफ़दी का नाटक 'गोहर मुग़द', जो सरकार की कमियों की ओर संकेत करता हुआ एक राजनीतिक नाटक था राजकीय प्रोत्साहन प्राप्त न कर सका। उनका दूसरा राजनीतिक नाटक 'चूब बे दस्तहाए-वरज़ील' बहुत सफल हुआ और पसंद किया गया तथा सन् 1979 ई. तक छः बार छापा गया। गुलाम हुसैन साफ़दी सन् 1960 ई. के उपरांत के उत्कृष्ट नाटक लेखकों में से हैं। उन्होंने न केवल नाटक लिखे अपितु उनका मंचन भी किया तथा कुछ चर्चाचित्रों का निर्माण भी किया।

बीजायी ईरान का प्रसिद्ध नाटककार होने के साथ-साथ फ़िल्म निर्माता भी रहा है। उसने पारंपरिक नाटकों और कथाओं को भी तत्कालीन परिस्थितियों में ढालकर मंचित किया है। उसने तीन कठपुतली नाटक, 'ऊरसकहा, गुरब दर दिवार ग़रीब और क्रिस्ते माहे-पिन्हान' (सन् 1342 श./1963 ई.) कई बार मंचित किए तथा इनको नई शैली के साथ प्रस्तुत किया गया। इनमें कठपुतलियों के स्थान पर पुरुष अभिनय करने थे। यह प्रयोग बहुत सफल हुआ। इसी प्रकार एक अन्य नाट्य लेखक रादी हैं। उनके नाटकों के पात्र कष्ट, परेशानी, संघर्ष, नाकामी को अभिव्यक्त करते हैं तथा अज्ञान के अंधेरे और लालच के घेरे में या दूसरों के चंगुल में फँसे रहते हैं और अवर्णिित जीवन को छोटी-छोटी और संदेहास्पद आशाओं के साथ बुरे अंत तक जीने के लिए बाध्य हैं। उसके लिखे नाटकों में 'अफ़ूल' (सन् 1343 श./1964 ई.), ईरसिये ईरानी (सन् 1347 श./1968 ई.), ट्रेज़डी मर्ग दर पाइज़ (सन् 1349 श./1970 ई.), पल्लेकान (सन् 1368 श./1989 ई.) और आमीज़े-क़लमदान', प्रमुख नाटक हैं। इन्हें थियेटर 'फ़ज़र' में हादी मरज़वान (सन् 1376 श./1977 ई.) के निर्देशन में प्रस्तुत किया गया है। मनोविज्ञान, सामाजिक प्रवृत्तियों के विभिन्न पहलुओं तथा वर्गीय दृष्टिकोण के तत्त्वों को आधार बनाकर लिखने वाले नाटक लेखकों में रादी का नाम सदैव अग्रणी रहेगा।

इसी प्रकार ख़ुसरो हकीम के लंबे नाटक 'ऑनज़ा के माहीहा संग मी शवंद' (सन् 1970 ई.) और तीन छोटे नाटक 'अयूबे ख़स्ते ख़नदान' (सन् 1978 ई.), 'सोहराब शम्बे, सोहराब साज़' तथा 'बाली-ए-क़ब्रिस्तान' हैं। अंतिम दो नाटक सन् 1990 ई. में छप चुके हैं। पहले और अंतिम नाटक की शैली और कथानक में बहुत अंतर है। 'ऑनज़ा के माहीहा संग मी शवंद' नाटक में अनगिनत मयुआरे अपने असली शुभचिंतक को त्यागकर एक लालची और व्यवसायी के चंगुल में जा फँसते हैं। इस नाटक में उनके शोषण की व्यथा को अभिव्यक्त करने का प्रयास

किया गया है।

खुसरो हकीम द्वारा रचित 'सोहराव साज़-ओ-बालीए-कुब्रिस्तान' नाटक का कथानक मृत्यु और कुब्रिस्तान के वातावरण से संचार है। सोहराव असातीरी अपने प्रयास से कुब्रिस्तान को प्यार और खुशी के वातावरण में बदल देता है। इसी प्रकार इसमार्शल खलज का नाटक 'तबियत गिराई' (प्रकृतिवाद) पर आधारित है जिसमें कथानक कृत्रिमताओं, वेश्यालयों, जुए के अड्डों, बेरोज़गार लोगों के घरों, गुण्डों या नशेड़ी लोगों के इर्द-गिर्द घूमता है। इसमें धरती पर जीने को बाध्य लोग तथा उनकी नरक जैसी जिंदगी को दर्शाया गया है। इसमें पात्रों की आम बोल-चाल की सादी भाषा साफ़-सुथरी और झकझोर देने वाली है। खलज का 'पातुग' (सन् 1971 ई.), जो पाँच नाटकों में से एक है, छप चुका है। इसलामी क्रांति के उपरांत खलज नाट्य लेखन एवं मंचन के लिये प्रयत्नशील है और इनका निर्माण टेलीविज़न के लिए धारावाहिक के रूप में कर रहे हैं। इब्राहीम मकी ने लगभग पंद्रह नाटक (सन् 1964-1973 ई.) इसलामी इंकलाब के पूर्व तथा उपरांत लिखे हैं। इनमें कुछ में सामाजिक समस्याओं, पारिवारिक घटनाचक्रों और प्रेम की समस्याओं को प्रभावशाली ढंग से उभारा है। 'तक परदे' इब्राहीम मकी का नाटक सन् 1973 ई. में छपा जिसके बारह अंक हैं।

सन् 1979 ई. अर्थात् इसलामी गणतंत्र की स्थापना उपरांत नाट्यकला को अभूतपूर्व प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्राप्त हुआ है। अनेक नाट्य उत्सव राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर आयोजित किए गए हैं। इनमें दहे-फ़ज़ के अवसर पर प्रत्येक वर्ष (सन् 1982 ई. के उपरांत) आयोजित होने वाला राष्ट्रीय नाट्य उत्सव उल्लेखनीय है। इनमें विभिन्न प्रकार की शैलियों के नाटक मंचित किए जाते हैं। पश्चिमी शैली में रचे गए नाटकों में हसन हामिद का 'बच्चे-ए-ताबिस्तानी', जमशीद जहान ज़ादे ने मंचित किया। 'शवे-सीवे-ज़मीनी' तथा मुहम्मद रहमानियान का 'शवे-यहूदा' बहुचर्चित नाटकों में से हैं। इसी प्रकार प्राचीन ईरानी संस्कृति की पुनरावृत्ति करते हुए नाटकों का आधार फ़िरदौसी कृत शाहनामा, निज़ामी का ख़ुम्सा (पाँच काव्यों का संकलन), अन्तार रचित आध्यात्मिक विषय पर आधारित विभिन्न काव्य हैं। ईरानी संस्कृति की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करने के लिए उपरोक्त (गद्य एवं पद्य) कृतियों पर अनेक नाटक रचे एवं मंचित किए गए जिनका प्रदर्शन न केवल देश में बल्कि विदेशों में भी हुआ तथा सभी प्रशंसा के पात्र रहे हैं। सन् 1990 ई. में फ़िरदौसी के सहस्राब्दी समारोह पर शाहनामा पर आधारित कई नाटक, उदाहरणतः 'रुस्तम-ओ-



आधुनिक नाट्य शैली

‘इसफ़्फ़दियार’, ‘त्राज़दी-ए-इसफ़्फ़दियार’, अली चिरागी द्वारा निर्देशित, फ़रूखी कृत ‘हफ़्त ख़ान’ और ‘सोमे-सियावुश’ एवं सादिक हात्फ़ी द्वारा रचित ‘इसफ़्फ़दियार’ नाट्य इतिहास की प्रगति के प्रमुख अंग के रूप में स्वीकृत हुए। अन्य शैलियों में भी पिछले दशक में सराहनीय नाटक लिखे एवं मंचित किए गए हैं। इनमें राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, पर्यावरण संबंधी, धार्मिक तथा पारिवारिक विषयों को वरीयता प्राप्त है। अतः वर्तमान काल में लिखे एवं मंचित किए जा रहे नाटकों में विभिन्न विषय एवं उद्देश्य दृष्टिमान हैं। इस संबंध में हुसैन फ़रूखी ने अपनी पुस्तक ‘नुमायशनामे नर्वासी दर ईरान’ में लिखा है कि इसलामी इंक़लाब के उपरांत उभरे नाटकों ने नाट्य लेखन इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ा है। इस काल में न केवल नाटकों की संख्या में वृद्धि हुई है बल्कि विषयों की विभिन्नता तथा उद्देश्यों की प्रधानता एवं गुणवत्ता को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। नाट्य लेखन में युवा लेखकों का योगदान सराहनीय है। वर्तमान दशक में तेहरान में नाट्य प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी अनेक संस्थाएँ आगे आई हैं। इन कला संस्थाओं ने भी नाट्य मंचन एवं लेखन में सराहनीय कार्य किया है। मुख्य नाट्य लेखकों में रिज़ा सादगी, अहमद सिपासदार, मंसूर हमीदी आदि के कार्य विशेष रूप से जनसाधारण एवं साहित्यिक जगत में प्रशंसनीय रहे हैं। इस प्रकार ईरान में नाट्यकला प्राचीन एवं आधुनिक सांस्कृतिक तत्त्वों के मिले-जुले रूप में उन्नति की ओर अग्रसर है।

## ईरानी संगीत का संक्षिप्त परिचय

**ईरानी संगीत का ऐतिहासिक क्रम**—ऐतिहासिक दृष्टि से ईरानी संगीत दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है : इसलाम पूर्व तथा इसलामोत्तर कालीन संगीत। इसलाम पूर्व कालीन संगीत सुविधा के लिए ऐतिहासिक क्रमानुसार अन्य भागों में बाँटा गया है जो संगीत की तात्विकता के आधार पर कभी भिन्न तथा कभी समान प्रतीत होता है।

**1. माद वंश पूर्व कालीन संगीत**—आठवीं सदी ई. पू. कालीन पत्थर की मूर्तियों एवं शिलालेखों से प्रमाणित होता है कि समाज में संगीत का प्रचलन था। इन स्रोतों में 350 वर्ष ई. पू. संबंधी चगमिश की मुहर को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें चंग (एक प्रकार का तंत्री वाद्य), तबल (ढोल), वूक (तुरही) अथवा सुपिर वाद्य बजाते हुए वादक तथा एक गवैया भी दर्शाया गया है। इससे स्पष्ट है कि इस काल में उल्लेखित वाद्य तथा उनसे संबंधित लय, ताल अथवा गीत का ज्ञान लोगों में था। इसके प्रचलन से यह भी माना जा सकता है कि इस काल पूर्व भी संगीत (वादन एवं गायन) की विभिन्न पद्धतियाँ समाज में प्रचलित थीं। ऐसे प्रमाण ईरानी सभ्यता के साथ-साथ सीमावर्ती अन्य क्षेत्रों की सभ्यता, जैसे बेबीलेनिया, आशूरी तथा ईलामी आदि का भी गहन अध्ययन करने के लिए प्रेरित करते हैं। शूश क्षेत्र में किए गए उत्खनन से प्राप्त पत्थर की विभिन्न आकृतियों एवं मूर्तियों से पता चलता है कि चंग वाद्य का इतिहास 1500 वर्ष ई. पू. से भी पुराना है। इसी प्रकार चंग तथा तंबूर की बनावट का भेद भी इन्हीं स्रोतों के अध्ययन से ज्ञात होता है।



ताक्रे-बुस्तान सासानी कालीन संगीत वादक मूर्तियाँ

2. **माद वंश कालीन संगीत**—‘माद वंशी आर्य थे’। विभिन्न स्रोतों के आधार पर यह प्रमाणित हो चुका है कि ज़रतुश्त धर्म का उदय भी माद काल में हुआ। इस धर्म की पवित्र पुस्तक अवेस्ता का वाचन सदैव गायन पद्धति से होता है। अतः यह माना जा सकता है कि संगीत की गायन पद्धति इस काल में पूर्णतः विकसित थी। कहा जाता है कि भारतीय-आर्यों के समान ईरान में भी संगीत के प्रथम केंद्र धार्मिक स्थल ही थे।

3. **हिखामंशी कालीन संगीत**—550 से 320 वर्ष ई. पू. तक ईरानी भूमि पर शासन करने वाले हिखामंशी वंश ने मानव सभ्यता के कई आयामों को साकार किया। इन्होंने सातत्य रूप में प्राप्त धार्मिक संगीत के अतिरिक्त सैन्य-शैली तथा दरबारी संगीत की प्रथा को आरंभ किया। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस के कथनानुसार कोरूप के काल में सैनिक शैपूर (तुरही अथवा विगुल) की ध्वनि पर उपस्थित होकर युद्ध के लिए कूच करते थे। इसी प्रकार युद्ध काल में विशेष गीतों का गायन उत्साहवर्धन के लिए होता था। इस काल के अवशेषों में प्राप्त कांस्य तुरही एवं विगुल उल्लेखनीय हैं।

4. **पारती अथवा अशकानी कालीन संगीत**—उपलब्ध स्रोत अशकानी काल में संगीत के प्रचलन की ओर संकेत करते हैं। दूसरी सदी ई. के अवशेषों में प्राप्त एक अतिसुंदर चपक है जिसपर दु-नय (द्वि-तुरही) तथा चंग वाद्य के चित्र बने हुए हैं। इसी प्रकार भाषा विज्ञान संबंधी स्रोतों से भी पता चलता है कि इस काल में धार्मिक गीतों की विशेष गायन पद्धति विद्यमान थी। काव्यशास्त्र में विद्यमान पिंगल सिद्धांत के आधार पर काव्य रचना की जाती थी। पारती कालीन भाषा के अध्ययन से पता चलता है कि लयबद्ध काव्यपाठ को ही ‘तराना’ कहा जाता था जो इसलामांतर काल में अरबी पिंगल शास्त्रानुसार ‘तसनीफ़’ अर्थात् बंदिश कहलाया।



آنچه در این کتاب است  
چنانچه در کتابهای دیگر است  
نمایان شده است



5. **सासानी कालीन संगीत**—ईरानी संगीत के इतिहास का स्पष्ट चित्रण सासानी काल से होता है। राजनीतिक स्थिरता तथा फ़ारस भूमि की सांस्कृतिक मिट्टी ने उनके दरबार को विभिन्न संस्कृतियों का संगम बना दिया था। विभिन्न राज्यों के कुशल एवं प्रवीण संगीतज्ञों के लिए सासानी दरबार सर्वोत्तम शरणस्थल था। बारबुद एवं नकीसा जैसे विख्यात संगीतकारों से सुसज्जित सासानी दरबार संगीत विद्या का भी मुख्य केंद्र था। कहा जाता है कि वर्तमान ईरानी संगीत का ढांचा बारबुद की देन है। उसे संगीत विद्या में संपूर्ण दक्षता प्राप्त थी। बारबुद ने 360 आहंग (धुन) की रचना की। यह जानकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रत्येक दिन एक नए आहंग की रचना हुई हो। बारबुद संबंधी संगीत का सात ख़ुसरवानी (संभवतः शहाना), तीस लहन (स्वर) तथा तीन सी आठ दस्तान (संभवतः धुन अथवा लय) पर आधारित है। ख़ुसरो परबेज़

संगीतकार बारबुद तथा ऊद, नै एवं दफ़ बजाते हुए अन्य वादक

के दरबार का यह महान् संगीतज्ञ ईरान में ही नहीं बल्कि पूरे एशिया में बहुचर्चित था। दरबारी संगीत के अतिरिक्त इस शासन काल में अन्य क्षेत्रों में भी संगीत विद्या को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इस काल के अन्य सुविख्यात संगीतज्ञों में खुसरो कवादान तथा रीजक (रीदक) भी उल्लेखनीय हैं। विभिन्न क्षेत्रों में रचित राग, जैसे इस्फ़ाहानक (इस्फ़ाहानी), निहावंदानीक (निहावंदी) तथा निशाबूरक (निशापूरी), आज भी ईरानी संगीत में महत्त्वपूर्ण राग माने जाते हैं।

**ईरान में इस्लाम धर्म का उदय तथा संगीत**—सन् 639-642 ई. के मध्य इस्लाम धर्म से ईरानी सभ्यता का प्रथम परिचय हुआ। नवीन चिंतन एवं विचार तथा कला एवं विद्या का आगमन हुआ। पुरानी ईरानी सभ्यता, इस्लाम धर्म तथा नई विद्याओं के योग से एक नई बहुआयामी संस्कृति का जन्म हुआ। संगीत विद्या भी नवीनता के प्रभाव से अछूती न रही। लेकिन अन्य कलाओं के समान ईरानी समाज में संगीत सम्माननीय रहा। जो संगीत निषिद्ध किया गया तथा आज भी निषिद्ध है उसमें शुद्ध एवं पवित्र संगीत कभी सम्मिलित नहीं रहा। गायन एवं वादन दोनों पद्धतियों के सैद्धांतिक रूपों का क्रमिक विकास एवं प्रसार सदैव होता रहा। वाद्य यंत्रों में सामयिक परिवर्तन का चक्र भी चलता रहा। मंसूर जलजल राज़ी इस काल का मशहूर संगीतवेत्ता है जिसकी रचित धुन एवं राग शीघ्र ही अन्य इस्लामी क्षेत्रों में भी प्रसिद्ध हुए। उसके अतिरिक्त इब्राहीम मूसली और उसका सपुत्र इसहाक मूसली भी मशहूर संगीतकार थे।

**मक़ाम पद्धति**—इस्लामोदय के पश्चात् मक़ाम पद्धति की संगीत व्यवस्था (प्रबंध) प्रचलन में आई। मक़ाम (ठहराव, पड़ाव) पद्धति में 133 दौर मुलायम (कोमल स्वरों के समूह) हैं। इसमें 12 प्रसिद्ध दौर (वर्ग, मूर्च्छना), छः आवाज़ (धुन) तथा 24 शोबे (उपवर्ग) उपजातियाँ प्रचलित हैं। स्पष्ट है कि इस वर्ग पद्धति में मीमांसिक एवं सैद्धांतिक नवीनताओं की सदा आवश्यकता रही तथा नवपरिवर्तन भी होते रहे। तीसरी सदी हि. में मक़ाम पद्धति के प्रसिद्ध गायक मंसूर जलजल राज़ी, इब्राहीम मुसली तथा उसके सुपुत्र इसहाक मुसली ने सैद्धांतिक एवं मीमांसिक दोनों आयामों में प्रशंसनीय कृतियाँ छोड़ी हैं।

आगामी सदियों में मशहूर संगीत-शास्त्री अबु नस्र फ़ाराबी की कृति 'अलमौसिकी-उल-कबीर', प्रसिद्ध विद्वान इब्ने-सीना की किताब 'अशशिफ़ा' का संगीत संबंधी भाग, इब्ने-ज़ीला-ए-इस्फ़ाहानी की 'अलकाफ़ी-फ़िल-मौसिकी' सफ़ीउद्दीन उरमुई की 'अल अदवार' तथा 'रिसाला-ए-शरफ़िया', क़तुव-उद्दीन शीराज़ी की 'दुर्र-ए-ताज' तथा अब्दुलक़ादिर इब्ने गैवी-ए-मरागी की पुस्तक 'जाम-ए-उल-लहान' एवं 'मक़ासिद-उल-लहान' इस्लामी ईरानी संगीत के इतिहास में संगीत के स्रोतों के रूप में सर्वमान्य रहेंगी।

**दस्तगाह क्रम पद्धति**—संगीत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ जिसकी निश्चित समय-सीमा निर्धारित करना संभव नहीं है। लेकिन आम धारणा के अनुसार यह परिवर्तन 13-14 हि. में प्रकट हुआ। फ़ुसत शीराज़ी की पुस्तक 'बहुर-उल-लहान' इस पद्धति की प्रथम पुस्तक मानी जाती है। इस परिवर्तन ने मक़ाम पद्धति को दस्तगाह (संभवतः संस्थान) पद्धति में बदल दिया। यद्यपि नवीन पद्धति मक़ाम पद्धति का ही परिवर्तित रूप थी क्योंकि इसमें आधारभूत तत्त्वों का अस्तित्व यथावत विद्यमान रहा। इसके अंश 'परदा' कहलाए। आचार्य बृहस्पति के मतानुसार मक़ाम का अर्थ राग अथवा राग प्रयोज्य स्वर-समूह था। संस्थान, ठाठ या मेल मक़ाम के ही पर्यायवाची शब्द हैं।

**क्वाज़ार कालीन संगीत**—लगभग पचास वर्ष की सफ़ूवी शासन कालीन अस्थिर राजनीतिक स्थिति के उपरांत क्वाज़ारी शासन ने सुदृढ़ केंद्रीय सत्ता स्थापित की। इस काल में संगीत के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई तथा अनेक संगीतज्ञ एवं संगीत शास्त्री ईरान के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रवीणता के कारण विख्यात हुए। इनमें प्रसिद्ध संतूर वादक मुहम्मद खान सादिक (शीराज़), अबुल हसन खान इकबाल आज़र (तबरीज़), सैयद रहीम इस्फ़ाहानी (इस्फ़ाहान), अली असगर कुर्दिस्तानी, जनाब दयावंदी आदि अपने-अपने क्षेत्रों में अति विख्यात रहे। इनके द्वारा ईरान की पारंपरिक संगीत विद्या को पुनर्जन्म मिला।

इसी काल में यूरोपीय संस्कृति के समागम का प्रभाव ईरानी संगीत पर भी पड़ा। यह परिवर्तन एक हज़ार वर्ष पूर्व आए परिवर्तन के समान था। कुछ ईरानियों ने यूरोपीय संगीत शैली का अनुकरण किया लेकिन अधिकांश ने सीना-व-सीना और नस्ल-दर-नस्ल माध्यम से संगीत घरानों में चली आ रही प्राचीन शैली को ही अपनाया। पुरातन संगीत के कुशल उस्ताद हबीब समाई, नूर अली वरुमंद, अबुल हसन सबा, अब्दुल्लाह दवामी, अली अकबर शहनाज़ी आदि ने स्वदेशी संगीत की धरोहर को अपनी पूरी आस्था, कुशलता एवं योग्यता से सुरक्षित रखा। इसीलिए उनके नाम सदैव स्मरणीय हैं।

आधुनिक काल में जिस संगीत पद्धति को अधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई वह अर्ध-ईरानी तथा अर्ध-यूरोपीय है। इस पद्धति ने दस्तगाह पद्धति को भी प्रभावित किया। संगीत महाविद्यालय की स्थापना तथा पश्चिमी शैली के अनुसरण के परिणामस्वरूप ऑर्केस्ट्रा के आगमन से ईरान के पारंपरिक संगीत में आंदोलनकारी परिवर्तन हुए। आज संगीत की निम्नलिखित पद्धतियाँ प्रचलित हैं—1. क्षेत्रीय संगीत (प्रायः मक़ाम पद्धति पर आधारित है)। 2. दस्तगाह संगीत 3. पश्चिमी संगीत शैली से प्रभावित क्षेत्रीय संगीत 4. यूरोपीय संगीत पद्धति (जिसमें आधुनिक तथा पुरातन यूरोपीय संगीत की पद्धतियों का मिश्रण है)।

**इसलामी इंकलाब तथा संगीत**—इसलामी इंकलाब के उद्देश्यों के अनुसार पुरातन ईरानी संगीत को पुनर्जीवित करने का सफल प्रयास किया गया। दस्तगाह पद्धति को संरक्षण देकर शुद्ध ईरानी संगीत को पुनः प्रचलित किया गया। लेकिन यूरोपीय शैली को भी पूर्णतः समाप्त नहीं किया गया। संगीत शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों में विधिवत् संगीत संकाय की स्थापना की गई।

**वाद्य**—सेहतार, संतूर, कमांचा, नै तथा ज़र्ब अधिक प्रचलित ईरानी वाद्य हैं। इनके अतिरिक्त पश्चिमी वाद्यों का भी प्रचलन है।

वर्तमान काल में ईरानी संगीत को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है :



तार एवं सेहतार

1. पारंपरिक संगीत 2. मिश्रित संगीत 3. क्षेत्रीय संगीत 4. अखाड़ों का संगीत 5. धार्मिक संगीत 6. खानकाही संगीत 7. सिंफोनिक (संभविक) संगीत।

1. **पारंपरिक संगीत**—यह पद्धति दो वर्गों में विभाजित है—(क) दस्तगाह रवीक पद्धति—यह शुद्ध ईरानी पुरातन संगीत पद्धति है जिसे सुन्नती संगीत शैली अथवा क्लासिकल संगीत के नाम से भी जाना जाता है। (ख) वर्तमान काल में क्लासिकल संगीत में पश्चिमी धुन तथा पश्चिमी वाद्य यंत्रों को ईरानी वाद्य यंत्रों के साथ मिलाकर जो संगीत प्रस्तुत किया जाता है वह जनसाधारण में अधिक प्रचलित है। लेकिन मूल धारा क्लासिकल संगीत की ही है।



कामांचा

2. **मिश्रित संगीत**—यह क्रमवद्ध संगीत, ईरानी संगीत, स्थानीय संगीत, दस्तगाह तथा अंतर्राष्ट्रीय संगीत विशेषतः यूरोपीय संगीत शैलियों का मिश्रण है।



सोस्तान का क़वाइली कीचक वादक

3. **क्षेत्रीय अथवा स्थानीय संगीत**—क्लासिकल संगीत के उपरांत प्रमुख प्रसिद्ध पद्धति क्षेत्रीय पद्धति है। क्षेत्रीय अथवा स्थानीय संगीत पद्धति में प्रत्येक क्षेत्र के सांस्कृतिक एवं सामाजिक तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण योगदान है जैसे, विलोचिस्तान का संगीत शेष क्षेत्रों के संगीत से भिन्न है क्योंकि वहाँ सामान्य रूप से ताल में एक समान अंतर होता है जो दस्तगाह अथवा क्लासिकल ईरानी संगीत में आवश्यक नहीं है।

बू-शहर की संगीत शैली में अफ्रीका के संगीत के प्रभाव दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार तुर्कमन क्षेत्र का संगीत विषम जातीय होने के कारण अन्य क्षेत्रों के संगीत को प्रभावित करता है।

4. **अखाड़े का संगीत**—ईरानी संस्कृति में प्राचीन काल से आचार-व्यवहार एवं व्यायाम का गहरा संबंध है। शाहनामे के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कुशी, घुड़सवारी एवं तीरअंदाज़ी पुरातन काल से ईरान में प्रचलित रहे हैं। पहलवानों को प्रोत्साहित करने के लिए शाहनामे के कुछ

भाग विशेष गायन तथा ताल वादन शैली में गाए जाते हैं। पहलवान कुश्ती तथा अखाड़े में किए जाने वाले अन्य व्यायामों में अंग संचालन उस ताल विशेष के अनुसार करते हैं। अखाड़े का मुर्शिद (गुरु) सभी गतिविधियों का मुख्य संचालक होता है। ईरानी प्रथानुसार यह आवश्यक है कि गुरु अखाड़े की संगीत शैली में भी प्रवीण हो। अखाड़ों में प्रायः ज़रब (छोटा ढोल जिसे बगल में दबाकर बजाया जाता है), तुरही तथा सेहतार (इकतार के समान, न कि सितार) आदि वाद्यों का प्रयोग आज भी प्रचलित है। अखाड़े की संगीत शैली क्षेत्रीय संगीत पर आधारित है। धुन, लय तथा ताल का चयन उसी के अनुसार होता है। काव्यपाठ भी संगीतबद्ध होता है।

**5. धार्मिक संगीत**— विभिन्न धार्मिक उत्सव एवं धर्म संबंधी घटनाक्रम के अवसरों पर संगीतमय अभिव्यक्ति को धार्मिक संगीत कहते हैं। इनमें विशेषतः मुहर्रम माह से संबंधित घटनाक्रम एवं दिवस विशेष पर संगीत के विभिन्न रूप मोह-सराई (करबला के शहीदों की स्मृति में शोक-गीत गायन), सीने-जनी (करबला के शहीदों के शोक में छाती पीटने की क्रिया), रोज़ा-खानी (शोक-गीत गायन) तथा शबहि-खानी (ताज़िया बनाकर मर्सिया-खानी की पद्धति) आदि हैं। इन सभी का मूल स्रोत करबला की हृदयविदारक घटनाएँ हैं। यह संगीत अधिकतर पीढ़ायुग होता है लेकिन नक्काली के समय हास्यरस का प्रयोग भी किया जाता है। यह अभिव्यक्ति केवल शास्त्रीय संगीत पर ही आधारित होती है अर्थात् शास्त्रीय संगीत का ही प्रयोग उपरोक्त धर्म संबंधी अवसरों पर किया जाता है। नाटक एवं संगीत के इस मिश्रण के कारण कुछ संगीत विशेषज्ञों ने इसे त्रासदीमय ऑपेरा कहा है।



ज़ाबुल, सीस्तान के वादक

**6. खानकाही संगीत**—सूफी मठों में प्रचलित विशेष संगीत शैली को खानकाही संगीत कहते हैं। विख्यात सूफी नजमुद्दीन कुर्बान के समय से 'समा' अथवा 'हाल' आने की अवस्था में इस संगीत शैली का प्रयोग किया जाता रहा है। ईरान में बकताशिया तथा चिशितिया सूफी केंद्रों में बाँसुरी वादन प्रचलित रहा है जबकि हिंदुस्तान में उसके स्थान पर हारमोनियम तथा इसके अतिरिक्त तबला तथा सितार एवं तंबूरे का प्रयोग भी आम रहा है। कुर्दिस्तान तथा तुर्की में छोटे ढोल तथा दफ़ का प्रयोग भी आम है। अधिकांशतः क़ादिरिया तथा नक्शबंदिया सूफ़ियों के यहाँ इन वाद्यों का प्रयोग होता है। शिआ धर्माचार्यों के मदरसों में तंबूर एवं दफ़ का प्रयोग प्रायः 'ज़िक्र-ए-खुदा' (स्मरण अर्थात् बारंबार खुदा का नाम जपने) के समय किया जाता है। इसी प्रकार हिंदुस्तान में धार्मिक संगीत पद्धति को सूफी खानकाहों में प्रचलित करने में क़व्वालों ने जो योगदान दिया है उसका वर्णन



ऑर्केस्ट्रा

करने के लिए एक अलग अध्याय की आवश्यकता है।

**7. सिंफोनिक संगीत**—सिंफोनिक अथवा संहवनिक संगीत मूलतः यूरोपीय संगीत पद्धति पर आधारित है। वर्तमान काल में मुख्यतः चार प्रमुख ऑर्केस्ट्रा समूह हैं। इनमें (1) तेहरान सिंफोनिक ऑर्केस्ट्रा (2) फ़रहंग सरा-ए-बहमन ऑर्केस्ट्रा (3) सदा-ओ-सीमा (टेलीविज़न) ऑर्केस्ट्रा (4) नवीन ईरानी संगीत ऑर्केस्ट्रा। इनका अध्यापन कार्य विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा कला-महाविद्यालयों में क्लासिकल तथा आधुनिक संगीत दोनों पद्धतियों में होता है। ईरानी सभ्यता में काव्यात्मक अभिव्यक्ति का प्रचलन पुरातनकाल से विद्यमान है। इसलिए संगीत का उसके साथ होना स्वाभाविक है तथा यह धारा वर्तमान में भी विद्यमान है।

उपरोक्त संक्षिप्त विवरण से ईरानी संगीत का केवल परिचय ही संभव है क्योंकि विस्तारपूर्वक तथा मध्य एशिया के संगीत का अन्य देशों, विशेषतः हिंदुस्तान पर प्रभाव गूढ़ अध्ययन का विषय है।

## ईरान में शिक्षा का इतिहास

ईरान में प्राचीन काल से शिक्षा का क्षेत्र ईरानी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। समय के साथ-साथ शिक्षा के विकास में सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक परिवर्तन का सीधा प्रभाव पड़ा। प्राचीन काल में शिक्षा एक पारिवारिक गतिविधि के रूप में ही विद्यमान थी तथा बच्चों को शिक्षित करने का संपूर्ण दायित्व परिवार पर निर्भर था। आवश्यकतानुसार शिक्षा का स्वतंत्र बुनियादी ढाँचे के रूप में विकास हुआ तथा यह पारिवारिक क्षेत्र की सीमा पारकर एक सामाजिक दायित्व बनी।

सर्वप्रथम हिख्मामशी शासकों ने शिक्षा के क्षेत्र पर अधिक ध्यान देना प्रारंभ किया। राजाधिकारियों, सेनानायकों तथा व्यावसायिक लोगों के प्रशिक्षण का प्रबंध किया गया। इस काल में बच्चों को बचपन से ही शिक्षित करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया।

सासानी काल में ज़रतुश्ती धर्मालय शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र बने तथा शिक्षा का प्रसार इसी माध्यम से हुआ। यहाँ धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त व्यावहारिक ज्ञान तथा अन्य विषयों में शिक्षा प्रदान की जाती थी।

### प्रारंभिक इस्लामोत्तर कालीन शिक्षा

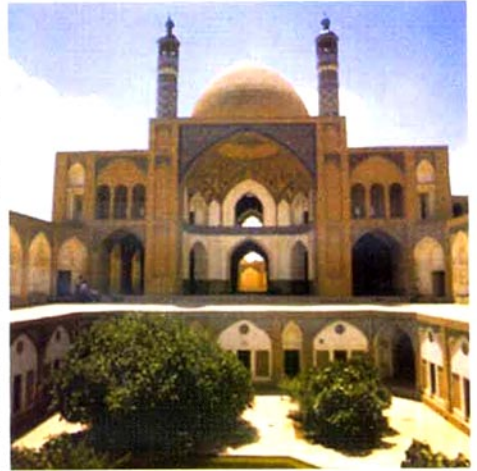
ईरान में इस्लाम धर्म के उदय के साथ-साथ पुरुषों और महिलाओं में समान रूप से इस्लाम के सिद्धांतों और मूल शिक्षाओं को जानने के लिए बहुत उत्साह था। पवित्र कुरान के महत्व का प्रचार तथा अज्ञानता और अधविश्वास को दूर करने की प्रेरणा इस्लामी शिक्षा द्वारा ही संभव हो सकी। इसी कारण आगामी लगभग साढ़े तीन शताब्दी तक इस्लाम धर्म का बहुत प्रचार-प्रसार हुआ।

इस्लामोदय के आरंभिक दशकों में इस्लामी शिक्षा धार्मिक मार्गदर्शन का माध्यम थी। इसलिए मस्जिदों से संलग्न शिक्षालय (मदरसे) राजनीति, कानून तथा धार्मिक शिक्षा का मुख्य केंद्र बने। परिणामस्वरूप शिक्षित लोगों की संख्या में वृद्धि और शिक्षा के क्षेत्र का विकास हुआ। नए विषयों पर वाद-विवाद और चर्चा प्रारंभ हुई। मस्जिद के सम्मान को ठेस न लगने इसलिए विवादास्पद विषयों की चर्चा शिक्षालय में ही होती थी। क्रमिक विकास तथा शिक्षा के प्रसार के कारण छोटे-छोटे शहर, देहात, शिक्षित तथा प्रवृद्ध लोगों के घर, पाठशाला एवं शिक्षालय, दार-उल-कुरान,

दार-उल-इल्म, सूफियों के आश्रम (खानकाह) तथा चिकित्सालय आदि शिक्षा के मुख्य केंद्र बन गए।

### निज़ामिया मदरसे पूर्व कालीन शिक्षा

दूसरी सदी हिजरी तथा उसके बाद शिक्षा का समुचित विकास हुआ। शिक्षालय तथा शिक्षकों की व्यवस्था तथा संचालन का प्रबंध सहायतार्थ भेंट तथा अनुदान से किया जाता था। इन शिक्षालयों में धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त शिक्षण कार्य अन्य विषय के शिक्षकों द्वारा किया जाता था। शिक्षण कार्य में साहित्यकार, कवि, वक्ता, दार्शनिक, चिकित्सक, पर्यटक तथा अन्य प्रयुद्धजनों का भी योगदान सराहनीय था। ईरान में निज़ामिया शिक्षालयों से पूर्व स्थापित शिक्षालयों में नीशापूर का वैहकी शिक्षालय (सन् 408 या 441-85 हि. क.), सईदिया शिक्षालय तथा बू सईद इसमाइल बिन अली बिन मस्ताई अस्तरावादी सूफी धर्म प्रचारक द्वारा स्थापित शिक्षालय मुख्य हैं।



काशन स्थित आगा बुजुर्ग द्वारा निर्मित मस्जिद एवं मदरसा

### निज़ामिए मदरसों की स्थापना तथा शिक्षा का क्रमिक विकास

ईरान के शिक्षा-क्षेत्र में एक नया अध्याय सलजुक शासक के वरिष्ठ मंत्री निज़ाम-उल-मुल्क द्वारा सर्वप्रथम बग़दाद में सन् 459 हि. क. में राजकीय विद्यालय की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ। इसके बाद अन्य इस्लामी क्षेत्रों जैसे, बल्ख, नीशापूर, हेरात, इस्फ़ाहान, बसरा, मवं, आमुल तथा मूसल में भी शिक्षण संस्थान स्थापित किए गए। कहा जाता है कि निज़ाम-उल-मुल्क को जिस शहर में कोई शिक्षित व्यक्ति मिलता, वह उसके लिए एक पाठशाला स्थापित कर देता था। पाठशाला और पुस्तकालय का कार्य सुचारु रूप से चलता रहे इसके लिए धन की व्यवस्था 'वक्फ़' द्वारा की जाती थी।

### शिक्षा के विभिन्न स्तर

उपरोक्त काल में शिक्षा का कोई विशेष पाठ्यक्रम नहीं था। समाज के विभिन्न वर्ग अपनी आवश्यकतानुसार शिक्षा ग्रहण करते थे। जैसे, व्यापारी वर्ग के व्यक्ति का ध्येय था कि उसका पुत्र पवित्र कुरान कंठस्थ कर ले तथा हिसाब-किताब के मूल सिद्धांतों को जान सके। इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत छात्र को पवित्र कुरान की दीक्षा के अतिरिक्त सादी की गुलिस्तान, निसाब-उल-सीबियान-ओ-उल्तस्सिल, जाम-ए-अब्बासी तथा सियाफ़े-मशफ़े-ख़त के अतिरिक्त कभी-कभी दीवान-ए-हाफ़िज़ और बूस्तान-ए-सादी का भी अध्ययन कराया जाता था। प्रायः ग़रीब व्यक्ति की इच्छा रहती थी कि उसका पुत्र संपूर्ण कुरान पढ़ ले, नहीं तो कम से कम कुरान की विशेष सूरतों को तो कंठस्थ कर ही

ले। इस काल में शिक्षा का व्यापक प्रभाव उपरोक्त तत्त्वों तक ही सीमित था।

उच्चस्तरीय शिक्षा राजकीय तथा धनी वर्ग के लोगों तक ही सीमित थी क्योंकि यह वर्ग ही उच्च शिक्षा का आर्थिक भार वहन करने में सक्षम था। पाठशाला की आरंभिक शिक्षा के उपरान्त उच्चशिक्षा का आदान-प्रदान बुद्धिजीवी, प्रबुद्ध तथा उच्चशिक्षित लोगों के संपर्क द्वारा ही होता था। इस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा प्रथा अठारहवीं शताब्दी तक चलती रही।

## फ़ाज़ार कालीन शिक्षा

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक में फ़ाज़ारी शासक सिंहासनारुढ़ हुए। इस काल में अन्य सामाजिक परिवर्तनों के कारण शिक्षा के ढाँचे में भी परिवर्तन की चेतना जाग्रत हुई। शिक्षा की सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप बनाने की दिशा में प्रयास प्रारंभ हुए।

ईरान में समाज की आंतरिक माँग तथा यूरोप में उन्नीसवीं सदी ई. में हुए शिक्षा तथा तकनीकी क्षेत्र के आश्चर्यजनक परिवर्तनों के प्रभाव के कारण कई नए विद्यालयों की स्थापना हुई। शिक्षा के प्रसार तथा नए विद्यालयों की स्थापना में विदेशी संस्थाओं, पत्रकारों, विदेशों में शिक्षित नई सोच के लोग, धर्माधिकारी वर्ग, समृद्ध वर्ग, व्यापारी वर्ग तथा राजनीतिक, सांस्कृतिक और सरकारी संस्थाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

शिक्षा के क्षेत्र में 'संवैधानिक क्रांति' का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। नए विद्यालयों के संस्थापक अधिकतर संवैधानिक क्रांति के सक्रिय कार्यकर्ता तथा समर्थक थे। शिक्षा का न्यायसंगत नया ढांचा तथा सरकारी संरक्षण संवैधानिक क्रांति की ही देन है। इस काल में सर्वप्रथम 'अनिवार्य शिक्षा क़ानून' पारित हुआ तथा सरकारी कार्यक्रम द्वारा नए शिक्षण संस्थानों की स्थापना तथा शिक्षा का प्रसार शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत रखा गया। नए शिक्षण संस्थान शिक्षा के उद्देश्य, कार्यक्रम, पाठ्य-सामग्री आदि के संदर्भ में पुरानी पाठशालाओं से भिन्न थे। इसी कारण वैज्ञानिक और तकनीकी पाठ्य-कार्यक्रमों का विस्तार होता गया। पदोन्नति आदि के लिए सरकारी परीक्षाएँ भी प्रारंभ हो गईं।

इस काल में शिक्षा के लिए उत्तम पाठ्य-सामग्री पर बल दिया गया लेकिन उपलब्ध कराई गई पाठ्य-सामग्री तत्कालीन सामाजिक वातावरण, विशेषतः संस्कृति के अनुरूप नहीं थी। शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के बाद भी शिक्षा पुस्तक और अध्यापक तक ही सीमित रही। बाल-शिक्षा, मनोवैज्ञानिक तथा वैयक्तिक आदि पक्षों का शिक्षा में कोई स्थान नहीं था।

नए शिक्षण संस्थानों की स्थापना और उनके विकास में मिर्ज़ा त़की ख़ान अमीर क़वीर, हाल मिर्ज़ा हसन रशीद, मिर्ज़ा हुसैन ख़ान सिपहसालार, मिर्ज़ा क़रीम ख़ान सरदार मुअज़्ज़म फ़ीरोज़ क़ूही अमीर तूमान, अली ख़ान नाज़िम-उल-उलूम, मिर्ज़ा महमूद ख़ान मिफ़ताह-उल-मुल्क आदि का योगदान उल्लेखनीय है।

## प्रथम कन्या विद्यालय

सन् 1321 हि. क. में ख़ानुम त़वी रशीदये, मिर्ज़ा हसन रशीदये के भाई की पत्नी, ने प्रथम कन्या विद्यालय

की स्थापना की तथा इसका नाम 'परवरिश' रखा गया। इसके बाद लाज़ारी कन्या विद्यालय तथा सेंट जोरुफ़ कन्या विद्यालय भी खोले गए। सन् 1297 वहमन, हि. श. में शिक्षा मंत्रालय ने महिला-शिक्षा विभाग की स्थापना की तथा महिलाओं के लिए दसवीं कक्षा तक निःशुल्क विद्यालय तेहरान में खोले गए।

## उच्चस्तरीय, तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा का विकास

दार-उल-फ़ुनून तत्कालीन ईरान का प्रथम सैनिक, तकनीकी और उच्च शिक्षा का केंद्र था। इसके उपरान्त सन् 1317 हि. क. में क़ानून की महत्ता और ज्ञान के महत्व को समझते हुए मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह के शासन काल में राजनीतिक विद्यालय की स्थापना हुई। इस विद्यालय की स्थापना स्वयं विदेश में क़ानून और राजनीति के क्षेत्र में शिक्षित नसरुल्ला ख़ान के पुत्र मिर्ज़ा हसन ख़ान मशीर-उल-मुल्क की संच का परिणाम थी। इसके बाद सन् 1318 हि. क. में सरकार द्वारा तेहरान में कृषि-तकनीकी की प्रायोगिक जानकारी के लिए मुज़फ़्फ़री कृषि विद्यालय स्थापित किया गया। सन् 1326 हि. क. में कमाल-उल-मुल्क के प्रयास और इब्राहीम हकीमी (हकीम-उल-मुल्क) की सहायता से ईरान का प्रथम ललित कला विद्यालय स्थापित किया गया। सन् 1298 हि. श. में प्राथमिक शिक्षा के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए केंद्रीय शिक्षण विद्यालय, सन् 1339 हि. क. में उच्च विधि विद्यालय, सन् 1303 हि. श. में उच्च विज्ञान विद्यालय तथा सन् 1302 हि. श. में प्रौद्योगिकी विद्यालय स्थापित किए गए।

## राजकीय शिक्षा नीति

**प्राथमिक शिक्षा :** ईरान में प्राथमिक शिक्षा काल पाँच वर्ष का है। इसका प्रारंभ छः वर्ष की आयु से होता है।

**मार्गदर्शक शिक्षा :** इसका काल तीन वर्ष का है तथा इसमें माध्यमिक शिक्षा के अनुरूप आवश्यक विषयों की शिक्षा दी जाती है।

**राजकीय माध्यमिक शिक्षा :** माध्यमिक शिक्षा काल चार वर्षों पर आधारित है। इसके अंतर्गत प्रथम वर्ष में सामान्य और आवश्यक विषयों की शिक्षा दी जाती है तथा द्वितीय वर्ष से यह दो विभिन्न धाराओं—(क) मानव विज्ञान (ख) व्यवहारिक ज्ञान, में विभाजित हो जाता है।

(क) इस काल में सामान्य और अन्य विषयों की संयुक्त शिक्षा दी जाती है। द्वितीय वर्ष गणित, भौतिकी, साहित्य और मानव विज्ञान के पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित है। तृतीय वर्ष में विद्यार्थी माध्यमिक प्रमाण-पत्र प्राप्त करता है।

(ख) इस काल में छात्र एक वर्षीय 'विश्वविद्यालय-पूर्व' पाठ्यक्रम में प्रवेश करता है। यह पाठ्यक्रम त्रिआवर्षी है तथा इसके विषयों का स्तर माध्यमिक पाठ्यक्रम के स्तर का है। इसका उद्देश्य विद्यार्थी को शिक्षा के तीसरे चरण अर्थात् विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए तैयार करना है।

## व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा

व्यावसायिक क्षेत्र में कार्यशील लोगों की दक्षता, कार्यकुशलता और कार्यक्षमता तथा सामाजिक जीवनस्तर को

उन्नत करने के उद्देश्य से ईरान में व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा का प्रारंभ सन् 1286 हि. श. में हुआ। इस वर्ष औद्योगिक क्षेत्र में सर्वप्रथम 'ईरान-जर्मन व्यावसायिक संस्थान' नामक तकनीकी और व्यावसायिक विद्यालय की स्थापना तेहरान में हुई। कृषि-शिक्षा के क्षेत्र में सन् 1297 हि. श. में बरजगिरान विद्यालय की स्थापना हुई तथा बाद में इसके स्थान पर तेहरान में कृषि विद्यालय की स्थापना हुई।

व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा के विकास की प्रक्रिया इसलामी क्रांति के आरंभिक वर्षों में शिथिल रही लेकिन 17 वें वर्ष में स्वतंत्र व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा सहायता विभाग की स्थापना के साथ इस क्षेत्र में द्रुत गति से विकास हुआ। यह व्यवस्था भी तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं थी। इसका मुख्य उद्देश्य अर्धनिर्मित वस्तुओं का प्रयोग करने वाले उद्योगों का पोषण था। उद्योग नीति से संबंधित योजनाओं के निर्धारण में विशेषतः विदेशी विशेषज्ञों का मुख्य योगदान था। इसी कारण उद्योग संबंधी शिक्षा के गुणात्मक स्तर, मानव संसाधन की कुशलता, दक्षता और संख्या आदि का विकास संभव न हो सका।

सन् 1369 हि. क. में शिक्षा नीति का गुणात्मक मूल्यांकन करने तथा व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा को ईरान की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकता के अनुरूप ढालने के लिए उच्च व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा समन्वय समिति का गठन किया गया। इस समिति के कार्यक्रम के अंतर्गत कारखानों के आस-पास शिक्षण संस्थाओं का विकास और विस्तार हुआ।

## नई शिक्षा नीति

सन् 1979 ई. में इसलामी सरकार की स्थापना उपरांत शैक्षिक स्रोतों एवं पाठ्यक्रमों के पुनः आकलन के लिए विशिष्ट शिक्षाविदों की एक उच्चस्तरीय समिति का गठन हुआ। इस समिति द्वारा निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार नई शिक्षा नीति मजिलस (संसद) द्वारा पारित की गई। राष्ट्र के आर्थिक-सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण की पुनः संरचना के लिए शिक्षा के मूल आधारों में परिवर्तन लाने हेतु माध्यमिक स्तर से नई शिक्षा नीति के अनुरूप व्यावसायिक विषयों को जोड़ा गया ताकि नवयुवकों की प्रतिभा का सही मार्गदर्शन कर उनकी राष्ट्रीय हित के लिए तैयार किया जा सके। इसी प्रकार नई शैक्षिक नीति में उच्च शिक्षा को भी रोजगार संबंधी शिक्षा से संलग्न किए जाने की व्यवस्था की गई। नई नीति के अनुसार माध्यमिक शिक्षा पाठ्यक्रम तीन वर्षों में विभिन्न विषयों के शिक्षण कार्य पर आधारित किया गया। इसके अनुरूप उच्चतर माध्यमिक प्रमाण-पत्र (ईरान में यह प्रमाण-पत्र डिप्लोमा कहलाता है) प्राप्त करने के लिए 96 पाठ्य इकाइयाँ निर्धारित की गई।

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा को क्रमशः सैद्धांतिक, प्रायोगिक एवं व्यावसायिक पाठ्य इकाइयों में विभाजित किया गया। डिप्लोमा प्राप्ति के लिए साहित्य एवं मानव विज्ञान, वाणिज्य तथा भौतिक-गणित विषयों के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए समान विषयों तथा शेष प्रत्येक विषय-समूह संबंधी विशिष्ट 68-71 इकाइयों में उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। प्रायोगिक एवं व्यावसायिक डिप्लोमा प्राप्ति का पाठ्यकाल पंचवर्षीय (3+2) है। उपरोक्त 96 पाठ्य इकाइयाँ अर्थात् डिप्लोमा के समापन उपरांत एक विशेष प्रवेश परीक्षा के द्वारा इच्छुक विद्यार्थी कुल 170 इकाइयों के सफलतापूर्वक अध्ययन से विशिष्ट डिप्लोमा प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। इनका स्तर तकनीशियन के समान होता है।

इच्छुक छात्रों को विश्वविद्यालय पूर्व डिग्री 32 अतिरिक्त पाठ्य इकाइयाँ उत्तीर्ण करने पर दी जाती है जिसके उपरान्त उत्तीर्ण छात्र ऐच्छिक व्यवसायों में सेवा करने योग्य बन जाते हैं। इस पाठ्यधारा से आने वाले छात्रों की सेवाओं से राष्ट्रीय हित में बहुत सहयोग प्राप्त हुआ है।

## सर्वशिक्षा अभियान

सर्वशिक्षा अभियान का प्रारंभ 7 दी मास, सन् 1358 हि. क. को इमाम खुमैनी के संदेश के साथ हुआ। इस अभियान के अंतर्गत चालीस वर्ष से कम आयु के लोगों में अशिक्षा दूर करने, शिक्षित लोगों का उत्थान करने तथा राजकीय शिक्षा से लोगों का संबंध जोड़ने के उद्देश्य से 'शिक्षा अभियान परिपट्ट' की स्थापना की गई। परिपट्ट के कार्यक्रम के अंतर्गत शिक्षा से वंचित बच्चों की ओर विशेष ध्यान दिया गया तथा उनको शिक्षित करने के कार्यक्रमों को बरीबता दी गई। लोगों में शिक्षा के प्रसार और विकास के लिए प्राथमिक-शिक्षा के कार्यक्रमों को प्रथम स्थान दिया गया।

## सर्वशिक्षा अभियान के विभिन्न आयाम

**प्राथमिक शिक्षा :** सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा को तीन भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम स्तर पर छात्र को फ़ारसी भाषा का अक्षर ज्ञान, सरल फ़ारसी पाठ्य-सामग्री, पढ़ना, लिखना और गणित सिखाया जाता है। द्वितीय स्तर पर क़ुरान मजीद पढ़ना और गणित की शिक्षा दी जाती है। तृतीय स्तर पर छात्र को परीक्षा उत्तीर्ण कर अपना शैक्षिक स्तर स्थापित करने योग्य शिक्षित किया जाता है जिससे कि वह राजकीय शिक्षा व्यवस्था की मूल धारा से जुड़ सके। यह कार्यक्रम विशेषतः उन बच्चों के लिए है जिन्हें अधिक आयु होने के कारण सरकारी विद्यालय में प्रवेश नहीं मिलता। इस कार्यक्रम का उद्देश्य 7 से 18 वर्ष तक की आयु के बच्चों को शिक्षित करना है।

**व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा नीति :** इस कार्यक्रम के अंतर्गत सरकारी व्यवस्था के अतिरिक्त छात्र को उसकी क्षमता और योग्यता के अनुरूप व्यावसायिक क्षेत्र से संबंधित प्राथमिक जानकारी दी जाती है। यह कार्यक्रम अल्पावधिक है तथा इसका शिक्षण कार्य विभिन्न मंत्रालयों, विशेषतः श्रम मंत्रालय के अधीन है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत मंत्रालय नवयुवकों के लिए विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र स्थापित करने की योजना बनाता है।

**जनजाति तथा वंचित क्षेत्र की शिक्षा नीति :** ईरान में जनजाति तथा वंचित क्षेत्रों में शिक्षा का स्तर उन्नत करने तथा छात्रों को शिक्षा व्यवस्था की मूल धारा से जोड़ने के निरंतर प्रयास किए गए हैं। शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े जनसमूह तथा क्षेत्रों में अशिक्षा दूर करने के उद्देश्य से प्रतिव्यक्ति एक निश्चित राशि प्रतिवर्ष व्यय करने का प्रत्येक वार्षिक बजट में प्रावधान किया गया है। प्रशिक्षित अध्यापकों को इन क्षेत्रों में कार्य करने के लिए अन्य सुविधाओं के अतिरिक्त उचित प्रोत्साहन राशि देने की भी व्यवस्था की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था और स्थिति के अनुरूप रात्रि-विद्यालयों की व्यवस्था की गई है। इन क्षेत्रों में व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा का भी प्रबंध किया जा रहा है। विशेषतः ग्रामीण छात्र इन विद्यालयों में कृषि संबंधी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इन सभी प्रयासों से जनजाति

समूहों और पिछड़े क्षेत्रों के शिक्षा स्तर में अत्यधिक सुधार हुआ है।

**उच्चस्तरीय शिक्षा :** माध्यमिक अथवा उसके समकक्ष स्तर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इसमें प्रवेश के लिए उच्च प्रतिभा तथा योग्यता की आवश्यकता होती है। उच्च शिक्षा का प्रबंध महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय के माध्यम से किया गया है तथा यहाँ से छात्र उच्च डिप्लोमा, स्नातक, स्नातकोत्तर तथा विद्यावाचस्पति आदि प्रमाण-पत्र प्राप्त करते हैं।

इसलामी क्रांति के उपरान्त उच्च शिक्षा मंत्रालय के अधीन सभी स्तर तथा विषय के छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

### धार्मिक शिक्षा संस्थान प्रणाली

ईरान के धार्मिक शिक्षा संस्थानों (होज़ा) में दी जा रही दीक्षा के दो प्रमुख विषय हैं : (क) इल्म-ए-फ़िक्ह-इसलामी शरीयत संबंधी शिक्षा का ज्ञान (ख) इल्म-ए-उसूल-इसलाम धर्म संबंधी सिद्धांत एवं दर्शन।

ईरान में धार्मिक शिक्षा-दीक्षा का इतिहास बहुत पुराना है। उपरोक्त विषयों से संबंधित ज्ञान की शिक्षा का प्रारंभ नज़फ़ से हुआ। शने:-शने: सामाजिक परिवर्तन एवं आवश्यकतानुसार अन्य स्थानों, जैसे नीशापूर, मशहद, इस्फ़ाहान, कुम में धार्मिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण एवं भव्य संस्थान अस्तित्व में आए।

वर्तमान काल के प्रमुख धार्मिक शिक्षा संस्थानों में कुम शिक्षा केंद्र बहुत महत्त्वपूर्ण है। यहाँ देश-विदेश से अनेक विद्यार्थी धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने आते हैं। इस संस्थान की स्थापना का श्रेय स्वर्गीय शेख अब्दुल करीम हायरी को जाता है तथा इसका पुनरुत्थान महामहिम आयतुल्लाह बरुज़्ज़ी के करकमलों द्वारा हुआ। उनके अथक प्रयास द्वारा प्रदत्त नया जीवन एवं स्फूर्ति ही इस संस्थान को महत्त्वपूर्ण बनाने में सफल सिद्ध हुए।

धार्मिक शिक्षा प्रणाली के अनुसार पूर्ण पाठ्य अवधि को तीन भागों में विभाजित किया गया है : 1. प्रारंभिक 2. माध्यमिक 3. उच्चतर।

**1. प्रारंभिक स्तर :** इसका काल त्रिवर्षीय होता है। इस काल में अरबी भाषा तथा व्याकरण एवं तर्क सिद्धांत के प्रारंभिक अध्यायों से विद्यार्थी का परिचय कराया जाता है। इस स्तर के अंतिम वर्ष अर्थात् तृतीय वर्ष में धर्मनिष्ठा, नीतिकता, फ़ारसी साहित्य तथा लेखन संबंधी विषयों, इसलामी सिद्धांत, इसलाम का इतिहास, पवित्र कुरान का शुद्ध पाठ एवं कंठ करना, व्यावहारिक एवं व्याकरण संबंधी ज्ञान आदि की शिक्षा प्रदान की जाती है।

**2. माध्यमिक स्तर :** माध्यमिक अथवा द्वितीय स्तर पर युवा विद्यार्थियों को फ़िक्ह संबंधी अध्याय तथा पुरातन शिक्षा सिद्धांत की शिक्षा प्रदान की जाती है। इस स्तर की अवधि चतुर्थ वर्ष से लेकर दशम वर्ष तक होती है। इस स्तर के पाठ्यक्रम में फ़िक्ह संबंधी सिद्धांत पर लिखित पुस्तकें व्याख्यान एवं टीकाओं का अध्ययन सम्मिलित होता है। इनके अनिश्चित सामान्य विषयों में इसलाम का इतिहास, मत, अरबी भाषा में संवाद, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र तथा दर्शनशास्त्र आदि की भी शिक्षा दी जाती है।

3. **तृतीय स्तर** : यह उच्चतर स्तर स्नातकोत्तर के समकक्ष स्वीकृत है। विद्यार्थी को प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर पढ़े गए विषयों की उच्चशिक्षा प्रदान की जाती है तथा विद्यार्थी को शोध-पत्र लिखने एवं प्रस्तुत करने के लिए भी प्रेरित किया जाता है। इस स्तर पर शोधार्थियों को संवाद एवं वाद-विवाद तथा अध्ययन एवं अध्यापन कार्य करने के लिए उत्साहित किया जाता है। इसके अतिरिक्त इस स्तर पर विद्यार्थीगण मुख्यतः 'इजतिहाद' (प्रयास एवं प्रयत्न; पवित्र कुरान-हदीस-इजमाअ पर कल्पना एवं विचार करके शरीअत संबंधी विषयों को बोधगम्य करना) के लिए प्रेरित किए जाते हैं।

तृतीय स्तर में उत्तीर्ण विद्यार्थी को विषय विशेषज्ञ बनाने हेतु सामाजिक आवश्यकतानुसार इजतिहाद की शिक्षा के अतिरिक्त फ़िक्ह एवं सिद्धांत के किसी एक विषय में विशेष शिक्षा प्रदान की जाती है।

वर्तमान प्रणाली के अनुसार विद्यार्थी अपनी पसंद एवं रुचि अनुसार गुरु (मागंदर्शक) का चुनाव करने में स्वतंत्र होता है। इससे गुरुओं में अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करने एवं प्रतिभा प्रदर्शन की सकारात्मक प्रतियोगिता बनी रहती है। दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई छात्र संख्या ने धार्मिक शिक्षा प्रणाली में उचित एवं आवश्यक सुधार का मांग भी खोला है। यद्यपि कुम एवं अन्य शहरों में इस प्रणाली के अंतर्गत सुचारु रूप से चल रहे अनेक शिक्षा केंद्र हैं परन्तु बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए कई अन्य संस्थानों की भी स्थापना की जा रही है।

वस्तुतः ईरान में शिक्षा प्रदान करने में व्यस्त दोनों प्रकार के संस्थान—विश्वविद्यालय एवं धार्मिक शिक्षा संस्थान देश की उन्नति एवं प्रगति में पूर्ण योगदान दे रहे हैं।

## ईरान के राष्ट्रीय संग्रहालय

सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में संग्रहालय अथवा म्यूज़ियम स्थापन कार्य यूरोप में प्रारंभ हुआ। ईरान में संग्रहालय निर्माण की प्रथा अधिक पुरानी नहीं है लेकिन उत्कृष्ट एवं अनुपम वस्तुएँ, जैसे हीरे-जवाहरात, लेखन पट्टियाँ आदि के संग्रह करने का चलन प्राचीन काल से देखा जा सकता है। इसी प्रकार शत्रु को परास्त कर हस्तलब्ध वस्तुओं को प्रजा के प्रोत्साहन के लिए स्थल विशेष में संगृहीत करने की प्रथा भी ईरान में रही है। उदाहरणतः सन् 735 हि. में अर्दबील में शाह अब्बास के काल में शेख सफ़ीउद्दीन अर्दबीली से संबंधित सभी वस्तुओं का एक संग्रहालय बनाया गया था। सफ़वी शासक अपने मनोबल वृद्धि तथा पूर्वजों को सम्मान एवं आदर देने के लिए सदैव इस स्थल के दर्शन हेतु जाया करते थे। यह स्थल आज भी एक महत्वपूर्ण तीर्थस्थल के रूप में विद्यमान है तथा इसे ईरान का प्रथम संग्रहालय कहा जा सकता है। इसकी स्थापत्य कला अति सुंदर एवं दर्शनीय है। इसी प्रकार करीम खान ज़ंद ने शीराज़ में अपने शासकीय प्रासाद में दुर्लभ एवं बहुमूल्य वस्तुओं को प्रजा के दर्शन हेतु संग्रह किया। इन बहुमूल्य वस्तुओं में नादिर शाह द्वारा हिंदुस्तान से लूटकर लाई गई दुर्लभ वस्तुएँ भी थीं।

19वीं शताब्दी में पश्चिमी देशों से बढ़ते संबंधों एवं विभिन्न ज्ञानवर्धक विषयों के प्रसार से संग्रहालय स्थापन अथवा दुर्लभ एवं बहुमूल्य वस्तुओं के संग्रह का कार्य ईरान में भी प्रारंभ हुआ। सन् 1290 हि. में नासिरुद्दीन शाह ने यूरोप में प्रथम बार संग्रहालयों की व्यवस्था एवं प्रबंध का अवलोकन किया। उसके आदेश पर काखे-गुलिस्तान, नेहरान में प्रथम निजी संग्रहालय स्थापित किया गया जो सलतनती संग्रहालय के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यह संग्रहालय काखे-गुलिस्तान के उत्तरी भाग के एक पुराने भवन को तोड़कर बनाया गया। इसमें संग्रहालय के लिए विशाल कमरा तथा अग्रभाग में प्रवेश कमरा बनाए गए। इनके सम्मुख एक हौज़ तथा आसपास आवश्यकतानुसार कमरों आदि का निर्माण किया गया। इस आकर्षक भवन का विवरण, 'शरफ़' पत्रिका (जमादि-उल-सानी सन् 1300 हि.) में दिया गया है। लेखक के अनुसार शाही संग्रहालय दुर्लभ हीरे-जवाहरात, युद्ध के पुराने अस्त्र-शस्त्र, अनुपम चित्र एवं नक्काशी के अनूठे नमूने, हस्तकला की सुंदर एवं आकर्षक वस्तुएँ, चीन, सीरिया तथा इंग्लैंड से लाए गए चीनी एवं पार्सलीन के विशेष पात्रों को आकर्षक रूप से लकड़ी से निर्मित खानों में सजाया हुआ था। उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त प्राचीन राजवंशों के सिक्के, मुद्राएँ, महत्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ, पवित्र कुरान की हस्तलिखित पांडुलिपियाँ आदि संग्रहालय का दुर्लभ संग्रह था। नाना प्रकार की वस्तुओं का यह कोष विशेष अवसरों पर विशिष्टजनों के दर्शन के लिए ही उपलब्ध होता था।

## ईरान के राष्ट्रीय संग्रहालय

सर्वप्रथम 18वीं शताब्दी में संग्रहालय अथवा म्यूजियम स्थापन कार्य यूरोप में प्रारंभ हुआ। ईरान में संग्रहालय निर्माण की प्रथा अधिक पुरानी नहीं है लेकिन उत्कृष्ट एवं अनुपम वस्तुएँ, जैसे हीरे-जवाहरात, लेखन पट्टियाँ आदि के संग्रह करने का चलन प्राचीन काल से देखा जा सकता है। इसी प्रकार शत्रु को परास्त कर हस्तलब्ध वस्तुओं को प्रजा के प्रोत्साहन के लिए स्थल विशेष में संगृहीत करने की प्रथा भी ईरान में रही है। उदाहरणतः सन् 735 हि. में अर्दबील में शाह अब्बास के काल में शेख सफ़ीउद्दीन अर्दबीली से संबंधित सभी वस्तुओं का एक संग्रहालय बनाया गया था। सफ़वी शासक अपने मनोवल वृद्धि तथा पूर्वजों को सम्मान एवं आदर देने के लिए सदैव इस स्थल के दर्शन हेतु जाया करते थे। यह स्थल आज भी एक महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल के रूप में विद्यमान है तथा इसे ईरान का प्रथम संग्रहालय कहा जा सकता है। इसकी स्थापत्य कला अति सुंदर एवं दर्शनीय है। इसी प्रकार करीम खान जुंद ने शीराज़ में अपने शासकीय प्रासाद में दुर्लभ एवं बहुमूल्य वस्तुओं को प्रजा के दर्शन हेतु संग्रह किया। इन बहुमूल्य वस्तुओं में नादिर शाह द्वारा हिंदुस्तान से लूटकर लाई गई दुर्लभ वस्तुएँ भी थीं।

19वीं शताब्दी में पश्चिमी देशों से बढ़ते संबंधों एवं विभिन्न ज्ञानवर्धक विषयों के प्रसार से संग्रहालय स्थापन अथवा दुर्लभ एवं बहुमूल्य वस्तुओं के संग्रह का कार्य ईरान में भी प्रारंभ हुआ। सन् 1290 हि. में नासिरुद्दीन शाह ने यूरोप में प्रथम बार संग्रहालयों की व्यवस्था एवं प्रबंध का अवलोकन किया। उसके आदेश पर काखे-गुलिस्तान, नेहरान में प्रथम निजी संग्रहालय स्थापित किया गया जो सलतनती संग्रहालय के रूप में प्रसिद्ध हुआ। यह संग्रहालय काखे-गुलिस्तान के उत्तरी भाग के एक पुराने भवन को तोड़कर बनाया गया। इसमें संग्रहालय के लिए विशाल कमरा तथा अग्रभाग में प्रवेश कमरे बनाए गए। इनके सम्मुख एक हौज़ तथा आसपास आवश्यकतानुसार कमरों आदि का निर्माण किया गया। इस आकर्षक भवन का विवरण, 'शरफ़' पत्रिका (जमादि-उल-सानी सन् 1300 हि.) में दिया गया है। लेखक के अनुसार शाही संग्रहालय दुर्लभ हीरे-जवाहरात, युद्ध के पुराने अस्त्र-शस्त्र, अनुपम चित्र एवं नक्काशी के अनूठे नमूने, हस्तकला की सुंदर एवं आकर्षक वस्तुएँ, चीन, सीरिया तथा इंग्लैंड से लाए गए चीनी एवं पोर्सलीन के विशेष पात्रों को आकर्षक रूप से लकड़ी से निर्मित खानों में सजाया हुआ था। उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त प्राचीन राजवंशों के सिक्के, मुद्राएँ, महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ, पवित्र कुरान की हस्तलिखित पांडुलिपियाँ आदि संग्रहालय का दुर्लभ संग्रह था। नाना प्रकार की वस्तुओं का यह कोष विशेष अवसरों पर विशिष्टजनों के दर्शन के लिए ही उपलब्ध होता था।

सन् 1328 हि. में 'अतिरिक्त' (दुर्लभ एवं बहुमूल्य वस्तुएँ) नामक प्रथम सार्वजनिक संग्रहालय, तात्कालिक मंत्री मुर्तज़ा कुली ख़ान सनीउद्दौला ने स्थापित करवाया। इसका प्रबंधन कार्य प्रसिद्ध साहित्यकार ईरज़ मिर्ज़ा को सौंपा गया। ईरज़ मिर्ज़ा के ही प्रयत्नों से एक अन्य संग्रहालय 'ईरान' भी बनाया गया जिसमें उल्खनन से प्राप्त अनुपम एवं उत्कृष्ट वस्तुओं को सँजोया गया है।

सन् 1335 हि. में मुर्तज़ा ख़ान मुर्तज़ाई उर्फ़ मुमताज़ उल मुल्क को संस्कृति एवं राष्ट्रीय धरोहर मंत्री बनाया गया। मुर्तज़ा ख़ान पश्चिमी सभ्यता का विशेषज्ञ था तथा उसे यूरोपीय एवं अमरीकी देशों के भ्रमण का अनुभव था। उसने अपने मंत्रालय के भवन के एक भाग (मदरसा दारुल-फ़ुनून के उत्तरी भाग) में ही सार्वजनिक संग्रहालय की स्थापना की। उसका उद्देश्य केवल वस्तुओं को संग्रह करके रखना ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक दृष्टि से उनका अध्ययन करना भी था। इसके अतिरिक्त उसने जनसाधारण को भी दुर्लभ वस्तुओं के इस संग्रहालय में दान देने के लिए प्रेरित किया तथा संग्रहालय की एक नियमावली बनाई। इस संग्रहालय में विभिन्न विषयों, पुरातत्त्व संबंधी तथा ऐतिहासिक वस्तुओं के संग्रह ने लोगों में इस नए विषय के अध्ययन तथा अपने पूर्वजों की स्मृतियों को सँजोकर रखने की ओर आकर्षित किया। इसी आशय से सन् 1921 ई. में अंजुमन-ए-आसार-ए-मिल्ली (राष्ट्रीय निधि परिषद्) की स्थापना देश के उच्चकोटि के साहित्यकारों, वैज्ञानिकों तथा दुर्लभ एवं बहुमूल्य वस्तुओं के संरक्षण प्रेमियों द्वारा की गई। इस परिषद् की ओर से राष्ट्रीय महत्त्व के स्थलों की पहचान की गई तथा उन स्थानों पर प्रशंसनीय निर्माण कार्य हुआ। उनमें मशहद के निकट तूस में फ़िरदौसी का भव्य मक़बरा, शीराज़ में सादी तथा हाफ़िज़ की दर्शनीय समाधियाँ तथा इसी प्रकार ईरान की अन्य प्रमुख विभूतियों के स्मारक स्थल बनाए गए। इस परिषद् ने राष्ट्रीय स्मारकों एवं पुरातत्त्व संबंधी एक पत्रिका का प्रकाशन भी किया।



तेहरान स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय (मूज़े-ए-मिल्ली)

परिषद् ने सन् 1900 ई. में फ्रांस के साथ हुए उल्खनन संबंधी समझौते को रद्द करवाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। फ्रांस के पुरातत्त्ववेत्ताओं ने मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह की यात्रा के दौरान एक समझौता किया था जिसके अनुसार ईरान के सभी पुरातत्त्व संबंधी स्थलों (धार्मिक स्थलों के अतिरिक्त) के उल्खनन पर केवल फ्रांस का एकाधिकार होगा।

परिषद् ने सन् 1900 ई. में फ्रांस के साथ हुए उल्खनन संबंधी समझौते को रद्द करवाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। फ्रांस के पुरातत्त्ववेत्ताओं ने मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह की यात्रा के दौरान एक समझौता किया था जिसके अनुसार ईरान के सभी पुरातत्त्व संबंधी स्थलों (धार्मिक स्थलों के अतिरिक्त) के उल्खनन पर केवल फ्रांस का एकाधिकार होगा।

इस एकाधिकार के अधीन, कुछ मतानुसार, उन्होंने राष्ट्रीय महत्त्व की वस्तुओं को इस समझौते की आड़ में फ्रांस भेज दिया तथा उत्खनन कार्य में प्राप्त सभी वस्तुओं पर अपना अधिकार जताया। इस कार्य से क्षुब्ध परिषद् के सदस्यों ने मुहम्मद अली फरूगी की सहायता से सन् 1922 ई. में एक संशोधन विल के द्वारा इस समझौते को रद्द कर सभी उत्खनन कार्यों को राष्ट्रीय परिषद् को सौंप दिया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय महत्त्व के स्थलों एवं वस्तुओं को संरक्षण एवं सुरक्षा प्रदान करने हेतु कई कड़े नियमों पर आधारित एक कानून बनाया गया। इसी परिषद् के सुझाव पर पुरातत्त्व संग्रहालय की स्थापना हुई।

फ्रांस का समझौता रद्द होने के उपरांत एक अन्य समझौते के अंतर्गत ईरान में संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों के स्थापन हेतु सन् 1927 ई. में प्रसिद्ध फ्रांसीसी स्थापत्य एवं पुरातत्त्ववेत्ता अद्रेगदार को नियुक्त किया गया। अद्रेगदार के निरीक्षण में ईरान के विभिन्न पुरातत्त्व संबंधी ऐतिहासिक स्थलों का उत्खनन फ्रांसीसी तथा अन्य विदेशी एजेंसियों के द्वारा संपन्न हुआ। इसमें तख्त-ए-जमशीद का महत्त्वपूर्ण उत्खनन कार्य है जिसे शिकागो विश्वविद्यालय के पुरातत्त्ववेत्ताओं ने संपन्न किया है।

सन् 1317 हि. में अद्रे तथा उसके सहायक फ्रांसीसी स्थापत्यवेत्ता मार्कफ़ द्वारा तेहरान के बाग़-ए-मिल्ली (राष्ट्रीय पार्क) के पश्चिमी छोर पर 4500 वर्ग मीटर के भूखंड पर सासानी स्थापत्य का अनुसरण करते हुए एक भव्य इमारत राष्ट्रीय संग्रहालय (भूतपूर्व पुरातत्त्व संग्रहालय) के लिए बनकर तैयार हुई।

इस संग्रहालय के अतिरिक्त अन्य संग्रहालय, जैसे कुम का प्रसिद्ध संग्रहालय (मूजे-ए-आस्ताना-ए-मुकद्दस-ए-कुम), मशहद का राष्ट्रीय संग्रहालय तथा शीराज़ शहर का संग्रहालय भी विभिन्न स्थापत्य कलाओं के प्रतीक के रूप में बनाए गए। शीराज़ के मशहूर नज़र बाग़ में स्थित कुलाह-ए-फ़िरंगी भवन का निर्माण स्वयं करीम खान जुंद ने करवाया तथा उसका मक़बरा भी वहीं है। इसकी मरम्मत के उपरांत वहाँ कला-वीथी का निर्माण हुआ। सन् 1315 हि. में संस्कृति मंत्री डॉ. अली असगर हिकमत के प्रयत्न से पारस संग्रहालय अस्तित्व में आया।

उपरोक्त उत्तरदायित्व के कारण परिषद् का कार्य क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो गया। अतः सन् 1343 हि. में विकेंद्रीकरण के उद्देश्य से राष्ट्रीय पुरातत्त्व निदेशालय का संगठन किया गया तथा निदेशालय का कार्यालय भी राष्ट्रीय पुरातत्त्व संग्रहालय (वर्तमान राष्ट्रीय संग्रहालय), तेहरान में स्थापित किया गया। निदेशालय के कार्यभार में राष्ट्रीय एवं पुरातत्त्व महत्त्व के स्थलों के उत्खनन कार्य का प्रबंध एवं निरीक्षण, राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक स्मारकों एवं भवनों का संरक्षण, देखरेख एवं मरम्मत कार्य आदि को सम्मिलित किया गया। सन् 1358 हि. (सन् 1979 ई.) में जम्हूरी इस्लामी सरकार की स्थापना के उपरांत सभी निदेशालयों को 'साज़माने मीरास-ए-फ़रहंगी-ए-किशवर' (राष्ट्रीय सांस्कृतिक धरोहर संगठन) में विलय कर दिया गया। इस संगठन के निरीक्षण में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक महत्त्व की वस्तुओं की देखरेख एवं संरक्षण, पुरातत्त्व संबंधी स्थलों का उत्खनन एवं अध्ययन, ऐतिहासिक स्थलों की देखरेख, सुरक्षा एवं मरम्मत तथा पर्यटकों की सुविधा के लिए प्रशंसनीय कार्य हुए हैं।

## पर्यटन स्थलों की भूमि : ईरान

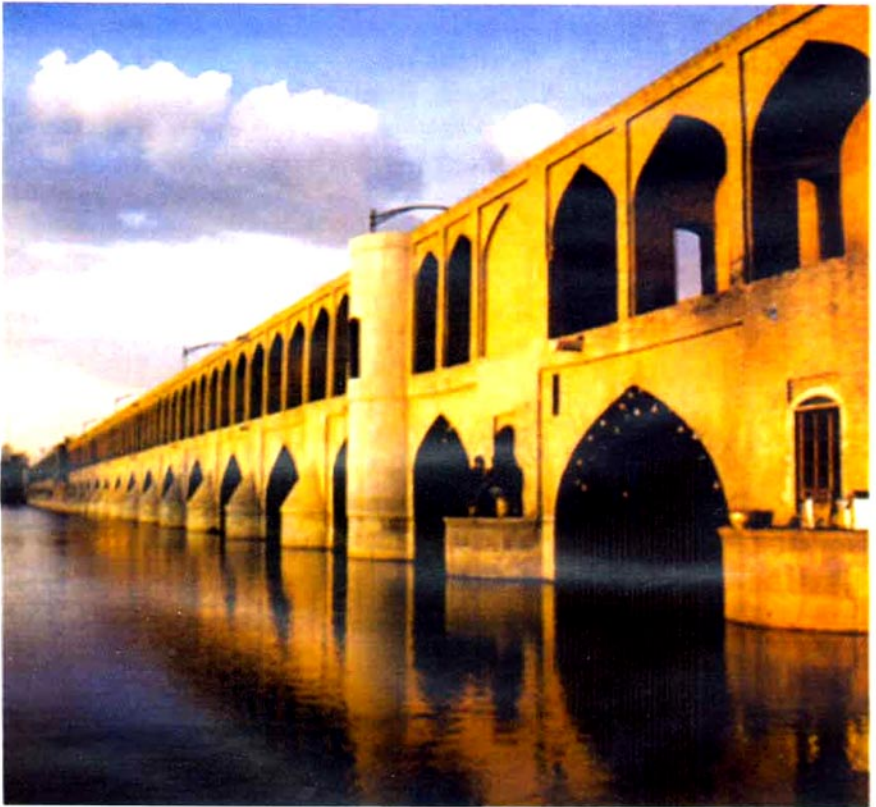
ईरानी सभ्यता एवं संस्कृति भ्रमणकारियों के लिए सदैव आकर्षण का मुख्य केंद्र रही है। विभिन्न भ्रमणकारियों ने ईरानी सभ्यता एवं संस्कृति का विस्तृत विवरण अपने यात्रा-वृत्तांत में किया है। इनमें हैरोडोटस तथा फिनागोरस का नाम प्रथम श्रेणी के भ्रमणकारियों में आता है। इनके वर्णनानुसार ईरान की सीमाएँ यूनान से लेकर सिंधु नदी तक फैली हुई थीं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अध्ययन से यह ज्ञात होता कि ईरान में इस्लाम धर्म के उदय के साथ-साथ सासानी साम्राज्य पूर्णतः धराशायी हो गया तथा इस्लाम धर्म का प्रसार शीघ्रता से पूरे देश में हो गया।



इस्फाहान स्थित काखे-चहल स्तून

इस अभूतपूर्व परिवर्तन के होते हुए भी ईरानियों ने अपनी पहचान बनाए रखी। उन्होंने इस्लाम धर्म के शिआ मत को अपनाया। इस्लाम धर्म के प्रमुख सिद्धांतों के साथ-साथ शिआ मत की धारणाओं का पूर्णतः अनुसरण किया। सफ़वी वंश की स्थापना इसी दिशा में एक सफल प्रयास था।

ईरान प्राचीन काल से आर्थिक एवं सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण देश रहा है। ऐतिहासिक संदर्भ में पश्चिमी देशों का इस देश से व्यापार तथा आर्थिक लेन-देन हिख़ामंशी काल से माना जाता है। यह आदान-प्रदान सफ़वी काल में पुनः प्रारंभ होकर क़ाज़ार शासन काल में अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया। भ्रमणकारी प्रत्येक काल



पुल-ख़ाज़ू (इस्फ़ाहान)

में ईरान का वृत्तांत लिखते रहे तथा इतिहासकार उन तथ्यों को आधार बना इतिहास में ईरान के बदलते स्वरूप का विवेचन करते रहे।

भ्रमणकारियों की एक सूची जॉर्ज कर्ज़न ने अपनी पुस्तक ईरान व कज़यइए-ईरान (ईरान तथा ईरानी संक्रमण) में संकलित की है जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सफ़वी काल में यूरोपीय देशों के राजनीतिक दूत निरंतर ईरान आते रहे हैं। यूरोपीय भ्रमणकारियों के लिए सफ़वी शासन काल पूर्व शासन कालों की अपेक्षा शांतिपूर्ण एवं राजनीतिक स्थायित्व का युग था। इस काल में भ्रमणकारियों तथा पर्यटकों ने ईरान के विभिन्न नगर, नगर व्यवस्था, दर्शनीय स्थल, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का विस्तृत विवरण अपने यात्रा-वृत्तांत में लिखा है। यद्यपि सफ़वी काल के पतन के उपरांत लगभग अर्धशताब्दी तक अस्थिरता का वातावरण रहा लेकिन भ्रमणकारियों का आवागमन निरंतर चलता रहा। क़ाजारी काल में पुनः इनके आगमन में वृद्धि हुई। कर्ज़न के अनुसार सन् 1800-1891 ई. के मध्य राजनीतिक, सैनिक तथा आर्थिक दूतों सहित लगभग 192 भ्रमणकारियों ने ईरान की यात्रा की। इनमें से अनेक ऐतिहासिक स्थलों के पुरातत्त्व संबंधी विषयों पर अध्ययन करने भी आए। उनके अध्ययन के परिणाम स्वरूप पुरातत्त्ववेत्ताओं एवं पर्यटकों का ध्यान ईरान की सांस्कृतिक एवं प्राकृतिक धरोहर की ओर आकृष्ट हुआ।

### ईरान में आधुनिक पर्यटन का प्रारंभ

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में मशरूतियत ख़ाह (संवैधानिक व्यवस्था समर्थक) लोगों की विजय हुई तथा एक नए राजनीतिक ढाँचे की बुनियाद रखने का वातावरण बना। इसी के साथ संसद, राष्ट्रीय सलाहकार समिति, शिक्षा, उद्योग, राजकीय संस्थान एवं कार्यालय, अस्पताल, पुलिस विभाग, सैन्य पुलिस बल, नगर निगम, होटल एवं पर्यटन केंद्र, सिनेमा एवं नाट्यशाला आदि का भी तीव्रता से स्थापन, निर्माण एवं विकास हुआ।

सन् 1279 हि. में मुज़फ़्फ़रुद्दीन शाह क़ाजार के काल में प्रथम मोटर वाहन के आगमन के साथ-साथ परिवहन की परिस्थितियाँ बदलीं। सन् 1300 हि. में पशु वाहनों का स्थान मोटर वाहनों ने ले लिया। इसी के साथ-साथ मार्ग विस्तार का कार्य



आवे-अली (जलक्रीड़ा स्थल)

आरंभ हुआ। सन् 1318 हि. में ईरान के समस्त भागों को रेल मार्ग से जोड़ने का कार्य शुरू हुआ। इसी प्रकार सन् 1306 हि. में हवाई जहाज़ का ईरान में प्रवेश हुआ तथा प्रथम हवाई पट्टी सन् 1321 हि. में तथा पहला हवाई अड्डा तेहरान में बनाया गया। इन आधुनिक साधनों से ईरान में यातायात और परिवहन की सुविधा से पर्यटकों के आवागमन में अपूर्व वृद्धि हुई। सन् 1907 ई. में मस्जिद सुलेमान क्षेत्र में तेल की खोज ने ईरान को उद्योग जगत के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र बना दिया। इस नई खोज ने ईरान को राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से सामरिक क्षेत्र बना दिया तथा उन्नतशील एवं शक्तिशाली राष्ट्रों में ईरान के विपुल खनिज भंडार को हथियाने की होड़ लग गई।

उपरोक्त परिस्थितियों ने राजकीय पर्यटन विभाग की स्थापना को प्रेरित किया। फलस्वरूप सन् 1314 हि. में प्रथम पर्यटन विभाग गृह मंत्रालय के अंतर्गत खोला गया। तदुपरांत प्रथम पर्यटन कार्य संबंधी एजेंसी 'ईरान टूर' सन् 1319 हि. में शुरू हुई जिसका मुख्य कार्य 'आवे-अली' तक जलक्रीडा (विशेषतः स्की) के लिए पर्यटकों के टूर आयोजित करना था। सन् 1342 हि. में एक स्वतंत्र पर्यटन विभाग की स्थापना हुई तथा पर्यटन-शिक्षा एवं पर्यटन मार्गदर्शन के विशेष शिक्षण कार्यक्रमों का प्रारंभ हुआ। आगामी वर्षों में सन् 1353 हि. में होटल प्रबंधन एवं पर्यटन संबंधी प्रशिक्षण कार्यों के लिए महाविद्यालय शिक्षण संस्थान की स्थापना तेहरान में हुई।

इसलामी जम्हूरी सरकार की स्थापना के उपरांत सभी पर्यटन संबंधी इकाइयों को एकत्रित कर एक स्वतंत्र विभाग 'ईरानगर्दी जहान गर्दी' की स्थापना सन् 1376 हि. में की गई। अथक प्रयासों के फलस्वरूप पर्यटन विभाग में नई कार्य योजनाओं की संरचना की गई। विश्व की पर्यटन संस्थाओं विशेषतः यूनेस्को से मधुर संबंधों का दौर शुरू हुआ। सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय धरोहर के कई महत्वपूर्ण स्थलों के संरक्षण के लिए विश्व संस्थाओं से सहायता प्राप्त की गई तथा पर्यटकों के लिए अनेक आवश्यक सुविधाओं को उपलब्ध कराया गया।

**मुख्य पर्यटन स्थल-**  
प्राचीन सभ्यता एवं विपुल ऐतिहासिक स्थलों का केंद्र ईरान, पर्यटन की दृष्टि से



फ़िरुदीसी का मक़बरा

विश्व के सर्वाधिक आकर्षक पर्यटन स्थलों में गिना जाता है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर के चार तथा राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त 3500 पर्यटन केंद्रों की इस भूमि के निवासी किसी भी राजनीतिक अवस्था में अपनी राष्ट्रीय धरोहर के संरक्षण में जुटे रहते हैं। यहाँ प्रकृति के विभिन्न रूप तथा ऋतुओं का मनोहर समन्वय है। 800 कि.मी. कैस्पियन सागर का तट तथा पहाड़ की हरी-भरी घाटियों का मिलन दर्शनीय है। इसी प्रकार फ़ारस की खाड़ी, उसके अनेक द्वीप तथा अरब महासागर का 1800 कि.मी. विशाल तटीय क्षेत्र, शुष्क, ठंडे एवं गरम मैदानी क्षेत्र, कलकल करती अनेक नदियाँ, हरे-भरे जंगल, प्राकृतिक झरने, आकर्षक एवं वैभवशाली प्राकृतिक गुफाएँ जिनके अंदर पुराऐतिहासिक काल में की गई पाषाण उत्कीर्ण चित्रकारी किसी को भी चकाचौंध कर देने के लिए पर्याप्त है।

सामरिक भौगोलिक स्थिति के कारण ईरान एशिया, यूरोप तथा अफ्रीका की सभ्यताओं का मुख्य मार्ग भी है। प्राचीनकाल पूर्व से पश्चिमी आक्रमणकारियों की वह केंद्रीय युद्ध भूमि मिली-जुली नई सभ्यता की भी जननी है। बहु संस्कृति एवं अनेक (लगभग 21) भाषाओं का यह संगम अनेक धर्म, जैसे ज़रतुश्त, ईसाई, इस्लाम, यहूदी, बौद्ध आदि का मुख्य केंद्र रहा है। विभिन्न जातियों एवं प्रजातियों, उदाहरणतः फ़ारस, लुर, कुर्द, विलोच, तात, गीलग (गीलक), माज़िंदरानी, तालिश, तुर्क, अरब, तुर्कमन, जर्मन आदि ने शताब्दियों पूर्व ईरान परिवार को संगठित कर अपनी पहचान एक ईरानी के रूप में विश्व में प्रसिद्ध की है।

इस प्रकार भौगोलिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, मानवीय तथा उद्योग संबंधी आकर्षक स्थलों का वर्गीकरण पर्यटकों की रुचि अनुसार किया जा सकता है। प्रत्येक रुचि से संबंधित पर्यटन क्षेत्र की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। पुरातत्त्व संबंधी पर्यटक के लिए पुरापाषाण, पाषाण तथा अन्य युगों से संबंधित महत्त्वपूर्ण स्थल जो ईरान में एक कोने से दूसरे कोने तक फैले हुए हैं, आकर्षण का मुख्य केंद्र हैं। जैसे काशान में तप्पा-ए-सीलीक, किरमान में तप्पा-ए-याहया, पश्चिमी आज़रबाईजान में तप्पा-ए-हसनलू, जाबुल में शहर-ए-सूखे आदि पुराऐतिहासिक काल के स्मृतिस्थल हैं। ऐतिहासिक काल संबंधी महत्त्वपूर्ण पर्यटन केंद्रों में तख़्त-ए-जमशीद, पासारगाद, हगमताना, सद दरवाज़ा, रे, शूश (दानियाल), नीशापूर, दर्रा-ए-शहर का मादाकत्व, तख़्त-ए-सुलेमान, ताक़-ए-बूस्तान, वी-स्तून, हमादान



हाफ़िज़ शीराज़ी का मक़बरा

का गंजनामा आदि इस्लाम पूर्व काल की धरोहर हैं।

इस्फाहान, यज्द, तबरेज़, कज़वीन, अर्दवील, नाईन, नीशापूर, किरमान, मशहद, शीराज़, तबस, रे, काशान आदि में इस्लामोत्तर काल संबंधी ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं मानव निर्मित भवनों के अनुपम एवं उत्कृष्ट उदाहरण दर्शनीय हैं। इसी प्रकार ईरानी संस्कृति की महत्वपूर्ण निशानी कारवाँ सराए (प्राचीन काल में पर्यटकों का आवास स्थल) विभिन्न शहरों में विद्यमान हैं।

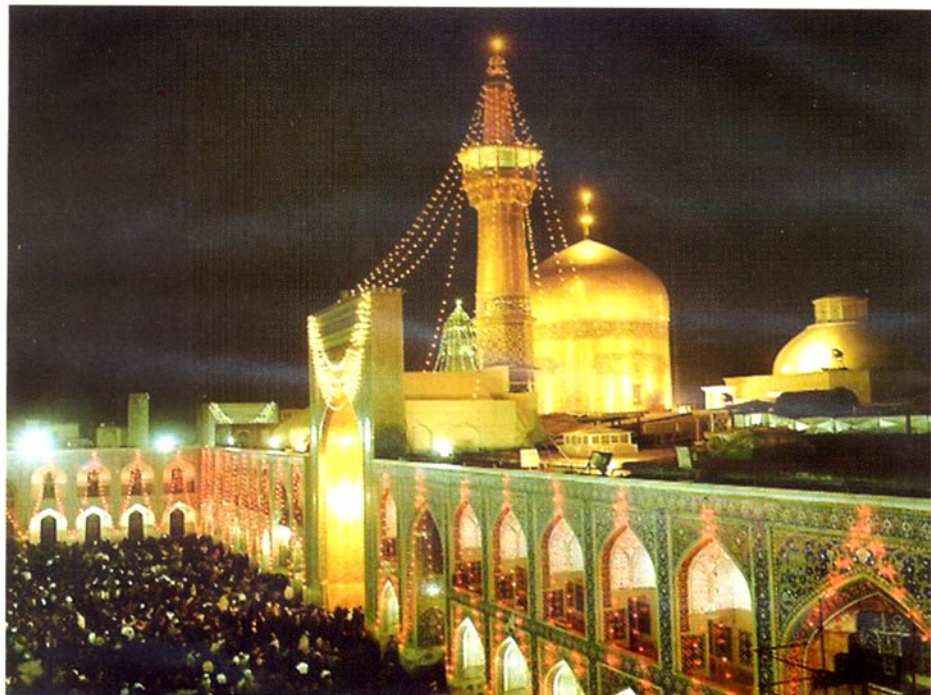
एक सर्वेक्षण के अनुसार प्राचीन एवं मध्य कालीन ईरान की 21 प्रतिशत जनसंख्या शहरों तथा 79 प्रतिशत गाँवों में आबाद थी। शहरों में आवासित शासक एवं सामंत वर्ग ने वैभवशाली प्रासाद एवं भवन निर्माण कार्य में रुचि दिखाई तथा धार्मिक स्थलों के उत्थान में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। धार्मिक स्थलों का निर्माण कार्य शहरों से दूर तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भी हुआ। इस्लाम धर्म के विभिन्न तीर्थ स्थलों का निर्माण लगभग प्रत्येक मुख्य शहर एवं गाँव में हुआ।



मशहद स्थित इमाम रिज़ा (अ) का रोज़ा

इन मुख्य एवं महत्वपूर्ण धार्मिक स्थलों में मशहद में परम श्रद्धेय इमाम रिज़ा की वारगाह (रोज़ा, मक़बरा), कुम में हज़रत मासूमे, शीराज़ में शाह चिराग का पवित्र मक़बरा तथा अन्य धार्मिक स्थल एवं प्राचीन शिक्षालय एवं गुरुकुल (मदरसे एवं होज़े) आदि उल्लेखनीय हैं। इन तीर्थस्थलों पर देश-विदेश के श्रद्धालु वर्षभर अनेक विशेष उत्सवों पर एकत्रित होते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या का मुख्य भाग (लगभग 65 प्रतिशत) प्राचीन काल से आबाद है। उन्होंने ग्रामीण संस्कृति एवं स्थापत्य कला के प्राचीन रूप को विद्यमान रखा है। इनमें मासूले, अबयाना, कंदुवान तथा मजन पर्यटन दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

ईरान में कूच नशीन (बंजारे, प्रवासी क़बीले अथवा जाति) की कुल संख्या लगभग दस लाख है। इनकी अपनी सभ्यता, संस्कृति तथा जीवनयापन के विभिन्न स्रोत हैं। अनेक मानव विज्ञानी इन कूच नशीनों की भाषा एवं संस्कृति के अध्ययन के लिए प्रत्येक वर्ष ईरान आते हैं। अन्य देशों के बंजारों (हिप्पी) की भाँति यह वर्ग जीवनयापन के लिए औजारों आदि के उत्पादन कार्य में व्यस्त रहता है।



शिराज़ स्थित चहल चिराग़

**पर्यटन संबंधी सुविधाएँ**—पर्यटकों की सुविधाओं के लिए एक से पाँच सितारा होटल (कुल 23897) तथा अन्य प्रकार की आधुनिक, पुरातन तथा मिलीजुली सभी प्रकार की आवासीय सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इनमें से 60 प्रतिशत निजी, 19 प्रतिशत सरकारी तथा 20 प्रतिशत सार्वजनिक अधिकार क्षेत्र में हैं। होटलों में 24 प्रतिशत एक सितारा, 29.4 प्रतिशत दो सितारा, 18.2 प्रतिशत तीन सितारा, 9.7 प्रतिशत चार सितारा, 10.5 प्रतिशत पाँच सितारा हैं तथा 8.2 प्रतिशत अनिश्चित हैं। कुल आवासीय पर्यटन क्षेत्र का सबसे अधिक भाग (होटल एवं आवासीय स्थल) तेहरान तथा मशहद में उपलब्ध है। राजनीतिक तथा राजकीय केंद्र सत्ता-स्थल तेहरान तथा धार्मिक आकर्षण केंद्र मशहद पर्यटन के मुख्य स्थल हैं। इनके अतिरिक्त इस्फ़ाहान, शिराज़, क़ज़वीन, हमादान, तबरेज़ आदि ऐतिहासिक स्थलों के कारण पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। होटलों में पर्यटकों के लिए ईरानी तथा गैर-ईरानी (प्रायः पश्चिमी) भोजन का प्रबंध है। इनमें मुख्यतः चावल, मांस, मछली, रोटी, फल तथा विभिन्न शीत एवं गरम पेय हैं। ईरान में मिलने वाली विभिन्न प्रकार की मिठाइयाँ, बेकरी में निर्मित खाद्य सामान तथा सूखे मेवे और उनका मिश्रण

(मिक्सचर) बहुतायत में उपलब्ध है। कैस्पियन समुद्र तट पर ओज़ुवरुन मछली से प्राप्त विश्व प्रसिद्ध कैवियर यात्रियों का पसंदीदा व्यंजन है।

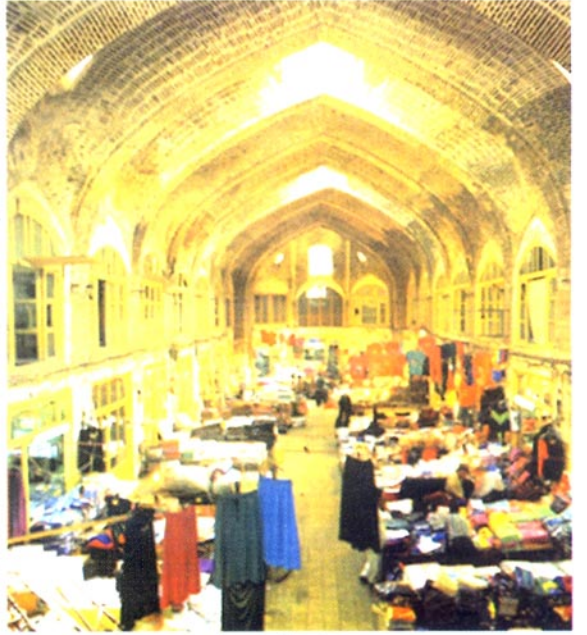
सभी पर्यटन स्थलों पर सुरक्षा के उचित प्रबंध हैं तथा हर संभव सहायता पर्यटकों को उपलब्ध कराई जाती है।

ईरान के पर्यटन विभाग के अतिरिक्त अन्य सरकारी एजेंसी अथवा विभाग, जैसे मीरास-ए-फ़रहंगी-ए-ईरान (राष्ट्रीय सांस्कृतिक धरोहर) पर्यटन क्षेत्र को पूर्णतः सुरक्षित रखने, रूचिपूर्ण बनाने एवं संरक्षण देने के लिए सदैव कार्यरत हैं।

पुराकाल से ईरानी संस्कृति में पर्यटन एवं भ्रमण का विशेष स्थान रहा है। विभिन्न उत्सवों विशेषतः नौरोज़ के उपरांत देशाटन के लिए जाना एक आम बात है। इसीलिए ईरानी समाज पर्यटकों की आवश्यकताओं को भली-भाँति समझते हैं। ईरान के लोग मेहमान नवाज़ी (अतिथि सत्कार) के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। विदेशी पर्यटक होटल एवं लॉज आदि में ठहरने के अतिरिक्त ईरानियों के घरों में ठहरना भी इसीलिए पसंद करते हैं।

ईरान में पर्यटकों के लिए विभिन्न प्रकार के दूर आयोजित किए जाते हैं, जैसे धार्मिक स्थलों के दर्शन हेतु, व्यापारिक, समुद्रतटीय तथा स्वास्थ्य संबंधी पहाड़ी क्षेत्रों का भ्रमण आदि।

ईरान में विदेशी पर्यटकों की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। अधिकांशतः पड़ोसी देशों के पर्यटक यहाँ तीर्थयात्रा करने आते हैं। इसके अतिरिक्त एक बड़ी संख्या यूरोपीय भ्रमणकारियों की है। भौगोलिक स्थिति के कारण भी असंख्य पश्चिमी देशों के पर्यटक ईरान के मनोरम एवं आकर्षक स्थलों के दर्शन के उपरांत ही पूर्व की ओर अग्रसर होते हैं। इसी कारण ईरान में तेल के अतिरिक्त पर्यटन विभाग राजस्व अर्जित करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।



तब्रिज़ का ऐतिहासिक बाज़ार

## ईरान की विभिन्न कलाएँ

**हस्तकला**—ईरान में आज हस्तकला एक स्वतंत्र उद्योग के रूप में विद्यमान है। इसकी जड़ें ईरानी संस्कृति की भाँति घनी और गहरी हैं। यहाँ के हस्त कलाकार कला के सच्चे सेवक एवं संरक्षक के रूप में अनिश्चित काल से जाने जाते हैं। उनके द्वारा रचित विभिन्न कलाकृतियाँ आज भी संसार के प्रसिद्ध संग्रहालयों एवं कलावीथियों में सज्जित हैं। ये कृतियाँ कलाविदों एवं कला आलोचकों के लिए ईरानी हस्तकला के विभिन्न आयामों पर चर्चा एवं विचार-विमर्श का स्रोत हैं। सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं व्यापारिक दृष्टि से हस्तकला की परिभाषा विद्वानों के लिए अन्वेषण एवं गवेषण कार्य की प्रेरक हैं।

विभिन्न कला-दृष्टिकोणों के अनुसार ईरान की हस्तकला को निम्नलिखित दो मुख्य भागों में विभाजित किया जाता है :

(क) यह हस्तकला का वह रूप है जिसमें संपूर्ण एवं आंशिक रूप से हाथ का बड़ी निपुणता से प्रयोग किया जाता है। दार्शनिक दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण उपांग है। मानव कला के प्रत्येक पहलू को समक्ष रखकर बिना मूल ढाँचे को छेड़े हुए कलाकार अपनी कल्पना से निपुणता और दक्षता का प्रदर्शन करते हुए किसी कृति को संपन्न करता है।

(ख) यह हस्तकला का वह रूप है जिसमें हाथों के अतिरिक्त हस्त-औज़ारों का उपयोग प्रचुरता से होता है।

ईरान की विभिन्न हस्तकलाओं का विवरण



स्वर्ण एवं रजत प्रतिमाएँ, सूसा (1300-1200 वर्ष ई.पू.)

आगामी पृष्ठों में संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है।

### फ़र्श-आवरण (दरी, क़ालीन)

**गिलीम (दरी) व उसकी बुनाई**—ऐतिहासिक रूप से दरी बुनाई की प्राचीनता के बारे में तुर्की के नगर अनातूली से प्राप्त 6000 वर्ष ई.पू. संबंधी एक दरी से यह पता चलता है कि यह कला हजारों वर्ष पूर्व भी प्रचलित थी। उस समय दरी की बुनाई वैसे ही होती थी जैसे चटाईयाँ बनाई जाती हैं। दरी की बुनाई में प्रयोग होने वाले उपकरण कपड़ा बुने जाने वाले उपकरणों से अधिक साधारण हैं। ऐतिहासिक संदर्भ में लोगों की यह धारणा रही है कि गिलीम एवं दरी साधारण हाथ की बुनाई है तथा कपड़ों की बुनाई के बाद दरियाँ बनाई गईं और इनके बाद क़ालीनों का बुनाई कार्य अस्तित्व में आया। दरियाँ कई प्रकार की होती हैं, जैसे साधारण बुनाई वाली एवं एक सूत्री, रंग-विरंगी इत्यादि।

दरियों की बुनाई (Horizontal loom/pit loom) क्षैतिज खड्डियों पर होती है। इस बुनाई में प्रयुक्त अन्य सहायक उपकरण अत्यधिक सादे होते हैं जैसे, पंजा (लोहे का), चाकू और क़ैची आदि। साधारणतः दरी की बुनाई में सूती धागों अथवा ऊनी धागों का प्रयोग होता है और कभी-कभी रेशमी धागों का ताने के रूप में उपयोग होता है तथा रंगे हुए ऊनी अथवा कभी-कभी रंगीन रेशमी धागों का भी दरी की बुनाई में प्रयोग किया जाता है। डिज़ाइन के लिए साधारणतः किसी विशेष नमूने अथवा रूपरेखा का प्रयोग नहीं किया जाता। बहुत कम लोग ही रूपरेखा का प्रयोग करते हैं।

ईरानी दरी बुनाई को दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) इस बुनाई में बाने को ताने में से सीधा निकाल लिया जाता है अर्थात् एक धागे को तानों के बीच से निकाल कर एक छोर से दूसरे छोर तक इस क्रिया को निरंतर चलाकर बुनाई प्रक्रिया को पूर्ण किया जाता है। इस शैली में बुनी हुई दरियाँ (विभिन्न प्रकार के गलीचे) सामान्य दरियाँ कहलाती हैं।

(ख) इस बुनाई में बाने को तानों के बीच में घुमाकर तथा एक अन्य महीन बाने को साथ लेकर इसको पूरा किया जाता है। पहले बाने को तानों में घुमा-घुमा कर प्रारूप अनुसार प्रक्रिया को पूरा किया जाता है। इसके बाद महीन बाने को एक छोर से दूसरे छोर तक ले जाया जाता है। इसके उपरांत उसे बुनाई के पंजे से ठोककर बिठा दिया जाता है।



क़ालीन बुनते हुए कहगीलूइए की क़वाइली स्त्री

सामान्य दरियाँ फ़ारस, कुर्दिस्तान, अर्दवील, बू शहर, खुरासान, किरमानशाह, कहगीलूए और बवीर अहमद तथा समवान एवं जुनजान प्रांतों में बनाई जाती हैं। द्वितीय शैली में उल्लेखित दरियाँ (गलीचे-सुसमाक़) घुमावदार तथा सज्जित दरियाँ कहलाती हैं तथा ये एकतरफ़ा होती हैं। इनके लिए किरमान, पूर्वी आजरबाइजान, अर्दवील, खुरासान, चहार महाले-वख़्तियारी, फ़ारस एवं खुज़िस्तान आदि प्रांत प्रसिद्ध हैं।

इन शैलियों के अतिरिक्त उल्लेखनीय है कि तुर्कमान के रेगिस्तानों में तथा खुरासान के पहाड़ी क्षेत्रों में बनी दरियाँ बहुत ही सुंदर होती हैं। कम अलंकृत दरियाँ जिनकी बुनाई में सफ़ाई कम होती है 'ज़िलू' कहलाती हैं। इनमें सूती ताने एवं रंगीन सूती वाने का प्रयोग होता है। इस प्रकार की दरियों के लिए यज़्द, काशान आदि प्रसिद्ध हैं।

### ईरान में क़ालीन बुनाई—सेंट

पीटर्सबर्ग म्यूज़ियम हरमीताज़ में रखे 500 वर्ष ई. पू. के एक क़ालीन के टुकड़े से पता चलता है कि क़ालीन बुनाई कला हज़ारों वर्ष प्राचीन है। रूडेनको, रूस के पुरातत्त्ववेत्ता द्वारा प्राप्त सन् 1949 ई. में यह पाज़ीरीक क़ालीन हिख़ामंशी काल से संबंधित है। इस पर बने वेल-बूटे तख़्ते-जमशोद की शिलाओं पर बने वेल-बूटों की भांति हैं। अन्य पुरातत्त्ववेत्ताओं का इस टुकड़े के बारे में मानना है कि यह ईरान में बुना हुआ है जिसका बाना रेशमी और सोने-चाँदी एवं हीरे-मोतियों से सजा हुआ था।



क्रशकई क़बीले में क़ालीन उत्पादन

इसका विवरण फ़िरदौसी ने अपने महाकाव्य 'शाहनामा' में किया है। इसी प्रकार एक उल्लेखानुसार कावुल के शाह ने ज़ाल के पिता साम को उपहार में क़ालीन भेजे थे।

इसलाम उपरांत लिखित पुस्तकों तथा यात्रा वृत्तांतों आदि से संकेत मिलता है कि क़ालीन घर-घर में प्रयोग किए जाते थे। विभिन्न लेखक अपनी पुस्तकों में यह वर्णन करते हैं कि ईरानी क़ालीन समस्त विश्व में विकते थे और अपनी कला की सुंदरता के लिए विश्व प्रसिद्ध थे।

तारीख़े-बैहक़ी में भी विभिन्न प्रकार के क़ालीनों का वर्णन मिलता है। मंगोल आक्रमण के कारण ईरान की समस्त हस्त एवं शिल्प कलाओं को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा। परंतु मंगोलों की अराजकता के उपरांत हेरात हस्तकला का मुख्य केंद्र बना तथा वहाँ ईरानी क़ालीन बुनाई कला पुनः शिखर पर पहुँची।

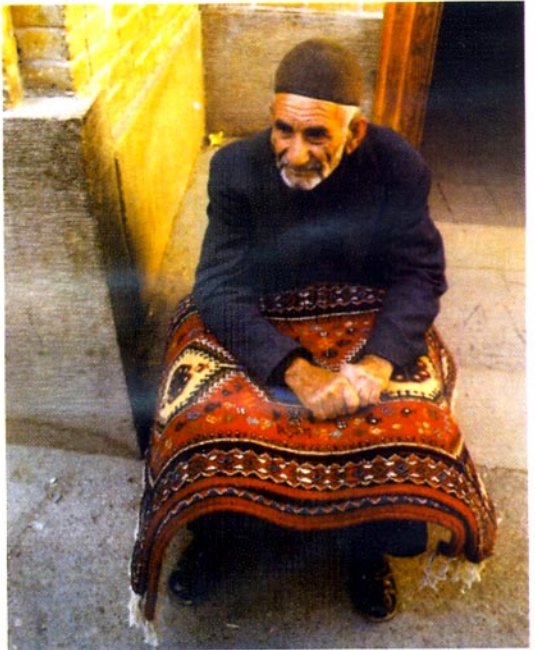
सफ़ियों के समय में क़ालीन बुनाई कला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई। उस काल में क़ालीन बुनाई कला के विभिन्न आयाम, जैसे रंग, बुनाई, अलंकरण आदि असीम उन्नति की ओर अग्रसर हुए। उस काल के बने क़ालीनों ने ईरान को समस्त विश्व में क़ालीन बुनाई कला में विशेष स्थान प्रदान किया। उस काल के कुछ क़ालीन विकटोरिया अल्बर्ट म्यूज़ियम, लंदन में आज भी सुसज्जित हैं।

आधुनिक काल में भी क़ालीन बुनाई ईरान के मुख्य व्यवसायों में से एक है। नासिरुद्दीन काज़ार के शासनकाल में तबरेज़ के व्यापारियों ने आधुनिक क़ालीन व्यवसाय की नींव डाली क्योंकि इससे पहले फ़तहअली शाह काज़ार के समय में रूस से युद्ध के कारण प्राचीन व्यवसाय अस्तव्यस्त हो गया था। इन तबरेज़ी व्यापारियों के लिए नए बाज़ार बनाए गए तथा नए निर्माण केंद्र भी प्रथम तबरेज़ और बाद में उसके आस-पास के शहर किरमान, सुलतानाबाद तथा कुछ अन्य स्थानों पर विकसित किए गए। इन्हीं व्यापारियों के प्रयासों से आज ईरान फिर विश्व में क़ालीन का प्रमुख निर्यातक है और उसकी क़ालीन कला पूर्णतया जीवित है।

जानकारों के अनुसार ईरानी क़ालीन के तीन प्रकार हैं : कच्ची ऊन, सुंदर एवं अलंकृत तथा जड़ी-बूटियों, पेड़-पौधों आदि से प्राप्त रंगों के अत्यंत सुंदर क़ालीन। ईरानी क़ालीन विशेषतः हस्तनिर्मित ऊनी एवं रेशमी सारे विश्व में अपनी उत्कृष्टता के लिए प्रसिद्ध हैं तथा इनकी माँग सदा रहती है। ईरानी भेड़ों का ऊन क़ालीन बुनाई के लिए कच्चे माल के रूप में प्रयोग किया जाता है।

क़ालीन की बुनाई में ताने-बाने का प्रयोग होता है तथा गाँठें लगाई जाती हैं। इसके लिए खड़ी-खड़ी तथा क्षैतिज खड़ी दोनों का प्रयोग होता है। औज़ारों में क़ेंची, चाक़ू, पंजा इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। इसकी बुनाई दो प्रकार से होती है : एक 'फ़ारसी गाँठ वाली बुनाई', दूसरी 'तुर्की गाँठ वाली बुनाई'।

दरी के विपरीत क़ालीन की बुनाई में प्रारूप (नक्शे) का प्रयोग होता है। अलंकरण अधिकतर ज्यामितीय, फूल-पत्तीदार अथवा जालदार होते हैं। यह ईरान के प्राचीन पारंपरिक अलंकरण हैं। दुनिया के अन्य क़ालीन बुनाई केंद्र, जैसे भारत, पाकिस्तान, चीन, तुर्की तथा अन्य देश भी क़ालीन बुनाई में ईरानी अलंकरणों का ही प्रयोग



शोराज़ स्थित सराय मुशोर में क़ालीन विक्रेता

करते हैं। इसी कारण ईरान को कालीन-अलंकरण का प्रणेता माना गया है।

कालीन बुनाई के ईरान के प्रमुख केंद्र हैं : चहार महाले-बख्तियारी इस्फ़ाहान, काशान, खुरासान, कुर्दिस्तान, आज़रबाइजान, किरमान, अराक आदि। कालीन बुनाई कला ईरान में हिख़ामंशी काल तथा सासानी काल से एक संरक्षित कला थी। खुसरो परवेज़ के समय के सोने-चाँदी तथा हीरे-मोतियों से सज्जित बहारिस्तान नामक कालीन का स्मरण प्रायः आज भी सुनने को मिलता है। वर्तमान काल में ईरान के लगभग 27,000 गाँवों तथा सभी आदिवासी क्षेत्रों में कालीन बुनाई का काम होता है। इस प्रकार यह उद्योग असंख्य ईरानियों के जीवनयापन का साधन है।

## बुनाई कला

**बुनाई**—बुनाई मुख्यतः विभिन्न उपकरणों से होती है। गाँवों, कस्बों तथा शहरों में अधिकतर महिलाएँ जुराब, टोपी, दस्ताने, मफलर, शाल इत्यादि बुनती हैं।

**पारंपरिक कढ़ाई**—सिलाई के द्वारा पारंपरिक नमूनों को सादे वस्त्रों पर सुई अथवा वैसे ही अन्य औजारों से उभारा जाता है। इस्फ़ाहान तथा बलूच क़वाइलियों की सुई वाली कढ़ाई, किरमान की कढ़ाई, बंदर लंगे की कलाबनु, ममक़ान तथा इस्फ़ाहान की सुई वाली (क़ेसमेंट) एवं मलीलेदोज़ी उभरी हुई कढ़ाई इत्यादि ईरानी कढ़ाई के रूप में प्रसिद्ध हैं। ईरान में लगभग तीस प्रकार का कढ़ाई कार्य व्यवहार में है।

**पारंपरिक छपाई**—पारंपरिक छपाई से तात्पर्य यह है कि छापे या ब्रश अथवा वैसे ही किसी अन्य उपकरण का वस्त्रों पर अलंकृत डिज़ाइन को उभारने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस्फ़ाहान की क़लमकारी (छीपे) वर्तमान काल में बहुत प्रसिद्ध है। इसमें लकड़ी के छापों से कपड़ों को छापते व अलंकृत करते हैं। केलिको (Calico) की छपाई तबरेज़ तथा अस्कू (इस्कू) में होती है। पूर्ण रूप से देखा जाय तो अधिकतर छपाई रेशमी कपड़ों पर छापों अथवा अन्य माध्यमों से होती है।

**नमदा**—इसका उत्पादन ऊन तथा फ़र के गट्टरों को एक विशेष विधि से जमाकर किया जाता है। उससे नमदे की टोपियाँ, ऊनी ओवर कोट, आसन अथवा फ़र्श पर बिछाया जाने वाला नमदा बनाया जाता है। भूमि पर बिछाये जाने वाले नमदे इस्तहबान, रामसर, समनान, बहबहान आदि शहरों में बनते हैं। नमदे की टोपियाँ जो लूर, क़श्काक़ और बख़्तियारी क़बीलों के पारंपरिक वस्त्रों का अंग हैं, कुर्द व शीराज़ के शहरों में बनती हैं।

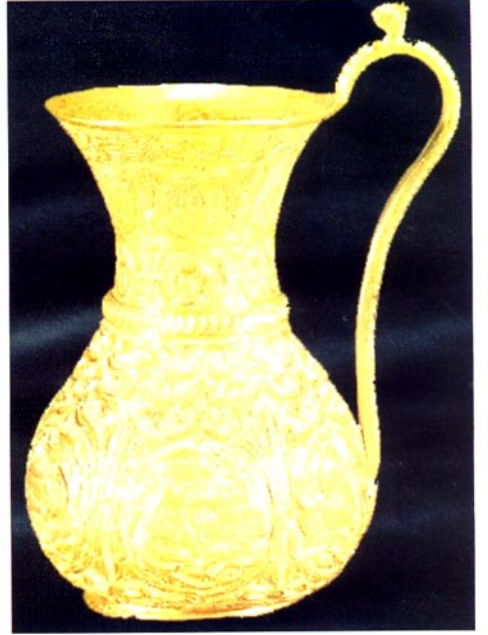
## धातुकला

पुरातत्त्ववेत्ताओं को पाँचवीं और चौथी सदी ईसा पूर्व के धातु पुरा-अवशेष तप्पे-सीलिक, काशान शहर से प्राप्त हुए हैं जो कि ईरान के प्राचीनतम धातुकला के नमूनों में से हैं। धातुकला का प्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए किया गया है। गीतान एवं लूरिस्तान में द्वितीय तथा तृतीय सदी ईसा पूर्व कालीन प्राप्त वस्तुओं में अस्त्र-शस्त्र, वाद्य यंत्र तथा सज्जापात्र आदि सम्मिलित हैं। इसलामोत्तर कालीन, विशेषतः सलजूकी तथा सफ़वी शासन काल की धातु निर्मित वस्तुओं में विभिन्न प्रकार की कलाएँ दर्शनीय हैं। इनमें ज़रदोज़ी, उत्कीर्ण चित्र, मुलम्माकारी, फ़ीरोज़ा भराई एवं मीनाकारी, आभूषण निर्माण, जालीदार कलाकृतियाँ आदि उल्लेखनीय हैं।

**धातु उत्कीर्णन**— विभिन्न धातु पात्रों पर किया गया उत्कीर्ण कला कार्य प्राचीन काल से मिलता है। यह कला कार्य स्वर्ण, मिश्रधातु, चाँदी, ताम्र, कांस्य तथा लोहे आदि पर धातु की क्लम से उत्कीर्णित है। परंतु श्रेष्ठ (उस्ताद) कलाकार स्वयं इच्छा के अनुरूप क्लम गढ़ते हैं।

इन धातु पात्रों पर बहुत ही सुंदर बेलबूटे, कैरियाँ (तुरंज), अर्धकैरियाँ (नीम तुरंज) तथा अन्य अलंकृत कैरियाँ, सुंदर बूटे, अन्य पारंपरिक अलंकरण कार्य में उमर खूयाम की रुवाईयाँ, हाफिज़ की गज़लें, शेख़ सादी के शेर तथा ईरान के अन्य महान् शायरों के काव्य को बहुत ही सुंदर प्रकार से इन धातु पात्रों पर उत्कीर्ण किया जाता रहा है। कुछ कलाकार तो अपनी क्लम से सोने, चाँदी, ताँबा, पीतल आदि पर तस्वीर भी उतार देते हैं। समकालीन ईरान में धातु उत्कीर्णन कार्य बृहत् स्तर पर इस्फ़ाहान शहर में होता है। वहाँ बहुत से श्रेष्ठ कलाकार हैं जिनके अपने-अपने विशेष अंदाज़ हैं।

एक विशेष क्लम का काम धातु पात्रों पर अलंकृत जालियाँ बनाना है जिसे फ़ारसी में मुशब्वक्कारी (जाली कार्य) कहते हैं।

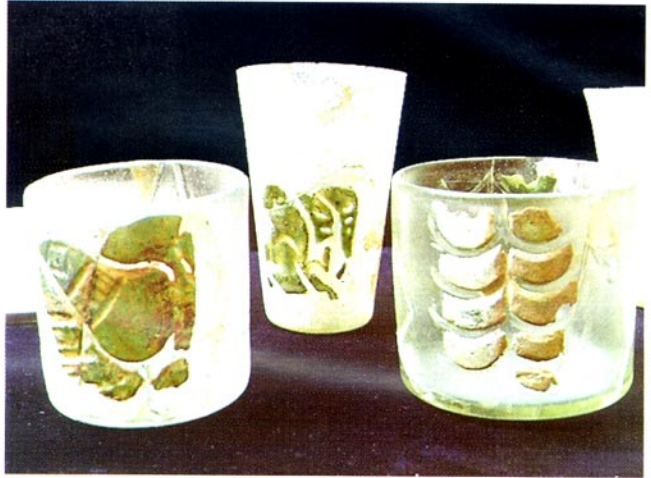


धातु-पात्र पर क्लमकारी का एक नमूना

**मुलम्मा चढ़ाने का कार्य**—मुलम्मा (आवरण) का काम सोने अथवा चाँदी से होता है। इसमें बड़े ही बारीक पारंपरिक अलंकरण बनाए जाते हैं। विभिन्न विद्वानों के अनुसार यह कला ईरान में लगभग 550 से 330 वर्ष ई. पू. में आरंभ हुई। परंतु प्राप्त प्रमाणों से पता चलता है कि 330 से 224 वर्ष ई. पू. में भी यह कला ईरान में प्रचलित थी। आर्थर पोप, ईरान विज्ञ ने अपनी पुस्तक में इस कला के बारे में संकेत दिया है कि रोम में 12वीं सदी ई. में इसलाम के आने के उपरांत यह कला अत्यधिक उन्नत अवस्था में थी। ईरान के मुलम्मा किए हुए स्वर्ण अथवा चाँदी से अलंकृत वस्तुएँ अधिक उपलब्ध नहीं हैं। परंतु क्राजार काल में निर्मित अलंकृत हुक्के, प्याले तथा कर्णफूल इत्यादि पर यह कला देखने को मिलती है। इस समय यह कला ईरान के तेहरान, इस्फ़ाहान, ज़नकजात तथा तबरेज़ इत्यादि शहरों में फल-फूल रही है। इन शहरों में बहुत से प्रवीण कलाकार इस काम को कर रहे हैं।

**मलीलेकारी (धातु पर वनत कार्य, धातु पर ज़रदोज़ी)**—यह कला ईरान में प्राचीन काल से विद्यमान है। इसमें प्रायः स्वर्ण अथवा रजत धातु का प्रयोग किया जाता है। वर्तमान काल में इसके प्रमुख केंद्रों में ज़नजान सबसे बड़ा केंद्र है। ट्रे, चीनी-पात्र (शुगरपॉट), चाय के प्यालों के दस्ते आदि पर यह कला देखने योग्य है।

**मीनाकारी—**वैसे तो मीनाकारी के उपलब्ध नमूने केवल 10वीं सदी क्रमरी (16-19वीं सदी ई.) उपरांत के ही प्राप्त होते हैं। परंतु ईरान विज्ञा पोष के अनुसार ईरान में यह कला लगभग 1500 वर्ष ई. पू. से चली आ रही है तथा यह कला 'आग एवं राख' हुनरे-दिरखशाने-अतिशो-खाक (कला) के नाम से जानी जाती है। विभिन्न धातुओं, जैसे स्वर्ण, चाँदी अथवा ताँवे आदि पर मीनाकारी के रंगों द्वारा बहुत ही सूक्ष्म अलंकरण बनाए जाते हैं और इसके उपरांत उन्हें भट्टियों में पका दिया जाता है। मीनाकारी के रंगों में वास्तव में काँच होता है। वस्तुतः मीनाकार रसायन शास्त्र ज्ञाता होता है क्योंकि उसे विभिन्न रसायनों तथा भट्टी में आवश्यक तापमान आदि का उचित ज्ञान होता है।



चीनी पात्रों पर मलीलेकारी

वैसे तो मीनाकारी के कई रूप हैं परंतु चित्रित अलंकरण वाली मीनाकारी अत्यधिक प्रसिद्ध है। आजकल इस्फाहान में प्रचलित अलंकृत मीनाकारी बहुत प्रसिद्ध है। सबसे अधिक मीनाकारी ताँवे पर होती है। इस पर रंग चढ़ाने के लिए 750 अंश तापमान की आवश्यकता होती है। द्वितीय चरण के रंगों को लगाने के उपरांत 500 अंश तापमान की आवश्यकता होती है। सोने के लिए मात्र 200 अंश तापमान की ही आवश्यकता होती है।

**आभूषण निर्माण—**ईरान में आभूषण निर्माण का कार्य माद साम्राज्य के समय अर्थात् दूसरी सहस्राब्दी ई. पू. से माना जाता है। परंतु आजकल, अलंकरण के अनुसार अथवा उनकी नाजूकता के विचार से अत्यधिक सुंदर आभूषणों का प्रतिनिधित्व तुर्कमान लोग करते हैं। आभूषण तुर्कमानी महिलाओं के पारंपरिक वस्त्रों का महत्वपूर्ण अंग हैं। उनके आभूषणों के द्वारा उनकी सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

पारंपरिक आभूषण निर्माण कार्य के प्रमुख केंद्र गुंबद काऊस, कुर्दिस्तान, सीस्तान, बलूचिस्तान, खुरासान आदि हैं। परंतु आधुनिक आभूषण हर शहर में बनाए जाते हैं। उत्सवों में प्रयोग के लिए पेशानीबंद नाम के सुंदर आभूषण घोड़ों के लिए भी बनाए जाते हैं।

**ज़रीह तथा द्वारपटों पर धातु कार्य—**इस कला के बेहतरीन नमूने विभिन्न पवित्र मक़बरों में बनी हुई ज़रीह तथा मक़बरों के द्वारपटों पर दिखाई देते हैं। श्रद्धा सुमन स्वरूप प्रदर्शित धातु कला के लिए मक़बरे प्रमुख स्थल

हैं। मशहद के रोजे में बनाई गई ज़रीह अपने आप में अनुपम और बेनज़ीर है। वर्तमान काल में इमाम खुमैनी के मक़बरे पर निर्मित ज़रीह भी आधुनिक ज़रीह निर्माण कला का अनूठा प्रमाण है।

## तलित कला

**मिट्टी युक्त कला**—इतिहास साक्षी है कि ईरान कला को आश्रय देने में सदा आगे रहा है। विभिन्न तलित कलाओं को प्राप्त संरक्षण इसका अच्छा उदाहरण है। पाँच या छः हजार वर्ष ई. पू. से ही मिट्टी से बनी कलाकृतियाँ यहाँ मिलती हैं। ईरान में यह कला 'सिफ़ालगरी' कहलाती है। यह कला मावरुन्नहर से निकल कर ईरान के पठारों में फली-फूली। ईरानी पठार के मध्य आवशार खाड़ी, अब्जना कुम की खाड़ी के तटों पर दक्षिणी फ़ारस राज्य तथा शूशमान शहर में यह कला अपने शिखर पर पहुँची। तख़्ते-जमशीद के निकट तलवाकून से बहुत से मृद मिट्टी कला के प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के दृश्य, वेल-वूटे, पशु-पक्षी स्पष्ट दिखाई देते हैं।



तंगे-चगान, सासानी कालीन अश्वारोही दल

चाक मिट्टी की प्राप्ति तथा चाक के आविष्कार के बाद यह कला अत्यधिक शीर्ष पर पहुँच गई। इस मिट्टी के बने बड़े-बड़े पात्रों पर विभिन्न पशु आदि अलंकरण के रूप में प्रदर्शित होने लगे। विभिन्न दृश्यों में ये पशु आपस में युद्धरत भी दिखाई देते हैं। दृश्यों के साथ-साथ सुलेखन कला का प्रदर्शन भी किया जाने लगा। इन कलाकृतियों में अलंकृत ज्यामितीय आधार भी स्पष्ट दिखाई देते हैं। इस कला के नमूने तख़्ते-जमशीद के चगामीश तथा तलवाकून, सीलक एवं शूश के दक्षिणी भाग में स्थित प्राचीन कारखानों में बने थे। इन स्थलों में प्राप्त मिट्टी के अवशेषों से पता चलता है कि उनका निर्माण चाक-चकलों द्वारा किया गया था। यह सभी पाँचवीं सदी ई. पू. से संबंधित हैं।

पश्चिमी ईरान के शूश और एलान में मिट्टी के पात्रों पर उत्कीर्णन के अलंकृत उदाहरण भी प्राप्त होते हैं, जैसे पशु-पक्षी, सूर्य, जंगल, पेड़-पौधे इत्यादि। समय के कालचक्र एवं समयबद्ध प्रगति के अनुसार दिखामंशी काल में विभिन्न वस्तुओं के निर्माण एवं उत्पादन के अतिरिक्त अन्य बहुत से पौराणिक दृश्य एवं पौराणिक जीव

भी मिट्टी की शिलाओं पर दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे सीमुर्ग, अर्धपशु अर्धमानव अर्थात् नरसिंह इत्यादि। इसी काल में मिट्टी की ईंटों का उत्पादन कार्य भी शुरू हुआ। गृह निर्माण कार्य में इनका प्रयोग होना उस काल की भवन निर्माण कला की उन्नति को प्रदर्शित करता है। अशकानी काल में धातु से निर्मित वस्तुओं के प्रचलन से मिट्टी से निर्मित वस्तुओं का रिवाज फीका पड़ गया। इस काल में निर्मित मिट्टी की वस्तुओं पर चमकीले हरे एवं नीले रंग की चिकनी तह (इनेमल) चढ़ाने का कार्य प्रारंभ हुआ। सासानी काल में यद्यपि स्थापत्य कला अपने शीर्ष पर पहुँची लेकिन मिट्टी का प्रयोग कलात्मक कार्यों में उतना अधिक नहीं पाया जाता।

## मूर्तिकला

लेखन के आविष्कार के बाद इस्लाम पूर्व ईलामी वंश में केंद्रीय शासन एवं सुदृढ़ व्यापार व्यवस्था के कारण मूर्तिकला का भी विकास हुआ। इस समय तक वस्तुओं पर पौराणिक चिह्नों का लोप हो चुका था तथा सामान्यजन और विशिष्ट व्यक्तियों के चित्र वस्तुओं पर सज्जित हुए तथा चित्रकारी में कलाकारों ने अपनी कल्पना का सहारा भी लिया। अन्य माध्यम अर्थात् धातु तथा संगमरमर का भी प्रयोग किया गया है। घनवाद का भी प्रयोग किया गया है जैसा कि आधुनिक यूरोप की कला में मिलता है अर्थात् एक स्थान पर विभिन्न दृश्यों का प्रस्तुतीकरण। मिट्टी के बड़े पात्र, छोटे पात्र तथा उनमें लगी हुई विभिन्न प्रकार की जल-निष्कासन नलियों पर विभिन्न प्रकार के अलंकरण मिलते हैं, जैसे रथ को खींचता हुआ बैल, अग्निशिखाएँ और पंख फैलाए हुए गरुड़ पक्षी इत्यादि। इसी प्रकार के अलंकरण इसलामी व्यवस्था के आने पर भी बनते रहे।

हिजरत से तीन हजार से दो हजार वर्ष पूर्व ज़ागरूस के पहाड़ों में धातु निर्मित पौराणिक पात्रों की सुंदर लघु आकृतियाँ प्राप्त हुई हैं जिनका निर्माण समय हिखामंशी काल आँका गया है। ये वस्तुएँ हिखामंशियों तथा सासानियों के काल के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस



तंगे-चगान, आहूरमज़दा का पाषाण चित्र (सासानी कालीन)

तरह की वस्तुएँ इसलामी काल तक प्राप्त होती हैं।

इसलामीकाल काल में विभिन्न स्थानों पर कला की प्रगति एवं उन्नति हमें सफ़वी काल में अधिक दिखाई देती है।

ईरानी कला के नमूने दुनिया के विभिन्न संग्रहालयों में सुरक्षित हैं, जैसे पेरिस के संग्रहालय, राष्ट्रीय संग्रहालय ईरान, लोरेन संग्रहालय, वैटिकन संग्रहालय, फ्लोरेंस संग्रहालय, बग़दाद संग्रहालय और बर्लिन संग्रहालय में ईरानी मूर्तिकला के मुख्य संग्रह हैं।

इस प्रकार की दुर्लभ वस्तुओं में सोने का बना एक पात्र जो कि हसनलू से प्राप्त हुआ है, ईरान की सच्ची मूर्तिकला का प्रदर्शन करता है। उस पर बने दृश्य मानो फ़िरदौसी के शाहनामे की कहानियों को रूपांतरित करते हैं। उनमें रुस्तम जैसा पात्र युद्ध करता हुआ दिखाई देता है तथा एक मानवाकृति के पीछे से तीन सिरवाला साँप दिखाई देता है। एक गरुड़ समान पक्षी एक महिला को लेकर उड़ता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार के सूक्ष्म चित्रण से ईरानी कला की उत्कृष्टता स्पष्ट झलकती है।

माद काल की मूर्तिकला के नमूने अधिक प्राप्त नहीं हुए हैं परंतु हिख़ामंशी काल की प्रारंभिक कृतियों पर माद कला का प्रभाव स्पष्ट नज़र आता है। हिख़ामंशी काल में मूर्तिकला के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। इनका स्पष्ट उदाहरण तख़्ते-जमशोद में देखा जा सकता है जो कि उसको काबुल और एलाम की कला से अलग करता है। हिख़ामंशी काल के प्रमुख अवशेष पासारगाद, शूश, मासूमा तथा तख़्ते-जमशोद में प्राप्त होते हैं। इस काल की चित्रकला का उदाहरण उपलब्ध नहीं है तथा उसका ऐतिहासिक उल्लेख भी मिलता है। परंतु कुछ भित्ति चित्रों से पता चलता है कि वे रंगों का प्रयोग भी करते थे।

हिख़ामंशी कालीन कला का प्रदर्शन विभिन्न राजप्रासादों की दीवारों, सीढ़ियों के दोनों ओर और प्रवेश-द्वार की चौखट के पथरों पर दिखाई देता है। उन पर सैनिक, दूर प्रदेशों से उपहारों के साथ आए राज्य प्रतिनिधि तथा हिख़ामंशी काल के शासकों एवं राजदूतों द्वारा उन्हें प्रदान किये उपहारों के चित्र स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। वे इन प्रतिमाओं को उत्कीर्ण करने के बाद में रंग भी भरते थे। शूश में प्रतिमाओं पर रंग भी मिलता है। प्रमुखतः हरा, काला, नीला, पीला तथा कभी-कभी भूरा रंग भी दृष्टिगोचर होता है। उस काल की लघु प्रतिमाएँ भी प्राप्त होती हैं जो कि विभिन्न जीव-जंतुओं तथा मनुष्यों का रूप लिए हुए हैं। ये अधिकतर लूरिस्तान में हस्तलब्ध हुई हैं। इसी प्रकार जानवरों के मुख युक्त पात्र भी प्राप्त होते हैं जो कि उत्तम ईरानी कला का प्रदर्शन करते हैं।

अशकानियों के काल की अधिक वस्तुएँ प्राप्त नहीं हुई हैं। परंतु जो भी उपलब्ध हैं वे उत्कृष्ट कला के प्रमाण हैं। उस काल के बहुत से शिलालेख भी प्राप्त होते हैं जिनसे उस काल की कला का अनुमान लगाया जा सकता है। अशकानी काल के बारे में यूनानी लेखों से भी पता चलता है। यूनानी लेखक फ़िलास्टार्ट ने अपने लेख में अशकानी महलों की सुंदरता एवं वैभव का वर्णन बड़े आकर्षक ढंग से किया है।

अशकानियों के युग में प्रतिमाओं का निर्माण तथा उन पर चित्रकारी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस विशिष्टता का सासानी काल में भी अनुकरण हुआ। सीस्तान के ख़्वाजा पर्वत पर प्राप्त अवशेषों से पता चलता

है कि इनकी मूर्तिकला यूनानियों से प्रभावित थी परंतु चित्रकला अशकानियों की अपनी कला है। ख्वाजा पर्वत के अवशेषों में दृश्य चित्रण तथा रंगों के उपयोग की तालबद्धता देखते ही बनती है। इनमें लाल, नीला, श्वेत और भूरे रंगों का प्रयोग तथा काले रंग से सुलेखन किया गया है। इस पारंपरिकता का प्रयोग इसलामी युग में भी किया गया है। इन चित्रों से उस काल के धर्म, समाज एवं वेशभूषा का भी पता चलता है। अशकानी काल में यूनानी-तुर्की भवन-निर्माण कला में ईरानी मूर्तिकला का प्रयोग हुआ है।

सासानियों की कला का अनुमान बीशापूर तथा शापूर के राजप्रासादों के भग्नावशेषों से प्राप्त उस काल से संबंधित पत्थर की मूर्तियाँ, अलंकृत वस्त्र आदि में से लगाया जा सकता है। इन कृतियों में महलों तथा राजप्रासादों के दरबार के दृश्य हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के उत्सव एवं सामान्य जनजीवन को चित्रांकित किया गया है और महिलाओं के वस्त्र, अलंकार तथा केशविन्यास का भी सूक्ष्म चित्रण किया गया है। यद्यपि सासानी युग के कला-अवशेष अधिक प्राप्त नहीं होते फिर भी इतिहासकारों ने उस युग के राजप्रासाद 'एवाने-मदाईन' का सूक्ष्म चित्रण किया है जिसको एक युद्ध में ध्वस्त कर दिया गया था।

सासानी युग की चित्रकला का उत्कृष्ट उदाहरण ज्यामितीय अलंकृत कार्य से सज्जित उस काल के सोने-चांदी के धागों से बने वस्त्रों से मिलता है। ये सभी वस्त्र रेशम से बने हैं और इनके नमूने अधिकतर पश्चिमी देशों के संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं। मिस्र से प्राप्त सासानी युग के 'सीमूर्ग' पक्षी से अलंकृत कूट वस्त्र फ्लोरेंस (इटली) के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। उस युग के वस्त्रों पर शिकारगाह के दृश्य अत्यधिक प्रचलित हैं। ये विभिन्न अलंकरण कपड़ों के अतिरिक्त दीवारों पर भी प्राप्त होते हैं।

अन्य अलंकरणों के समान दीवार पर चूने का अलंकरण भी सासानी काल में सामान्यतः उपलब्ध है। इस काल के बहुत से नमूने ईरान के राष्ट्रीय संग्रहालय में संरक्षित हैं।

इटली के इतिहासकारों ने ईरानी पत्थर-मूर्तिकला की समीक्षा की है और कहा है कि सासानी युग के कलाकारों का उद्गम स्थल फ़ारस था। इसका प्रारंभ काल अर्दशीर प्रथम का राज्य काल आँका गया है। उस युग से आज तक ईरानी कलाकार इस कला को शीर्षता तक पहुँचाने की कोशिश में लगे रहे हैं। अर्दशीर प्रथम तथा उसके पुत्र शापूर प्रथम के युग के अवशेष नक्शे-रजब और नक्शे-रुस्तम में प्राप्त हुए और उनके बाद ताक़े-बूस्तान में। यह अवशेष सासानी युग के अंतिम चरण के अनूठे उदाहरण हैं।

यहाँ विद्यमान सभी अवशेष मूर्तिकला के नमूनों के लिए अत्यंत प्रसिद्ध हैं। इनमें फ़िरोज़ाबाद, नक्शे-रुस्तम तथा बीशापूर में उपलब्ध पुरातत्त्व अवशेष ईरान की अनूठी एवं असाधारण कला के नमूने हैं।

सासानी काल की कला इसलामी युग के आने के उपरांत भी सफ़ावियों के काल में इस्फ़ाहान तथा हेरात के महान् कला केंद्रों को प्रेरणा देती रही। इसकी झलक 12वीं से 19वीं सदी क्रमशः में 'कहवेखाने की कला' के नाम से प्रसिद्ध कला में भी झलकती है।

इसलामी काल के प्रारंभ में ईरान में ललित कला के अधिक प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि अरबों के निरंतर आक्रमण से समस्त कलाएँ प्रभावित हुईं। परंतु धातुकर्म, शीशे का काम तथा कपड़ों की बुनाई में सासानी काल

की कला बची रही। दामगान की मस्जिद इसलामी प्रारंभिक काल का प्रतिनिधित्व करती है तथा अन्य भवनों में उल्लेखनीय इमारत अमीर इसमाईल सामानी का मक़बरा है। इसके बाद ललित कला का विकास होता रहा जो धीरे-धीरे क़ाज़ार युग तक चलता रहा और यहाँ तक कि आज ईरान के इसलामी शासन में भी यह निरंतर विकासशील है। इसलाम के आरंभिक काल से ही चूने का काम विकासशील था जिसपर सासानी कला की स्पष्ट छाप थी। आरंभिक मस्जिदों के निर्माण में चूने का काम ही किया गया था। इन भवनों में पक्के रंगों की टाइलों का भी प्रयोग किया गया। अन्य कलाओं में काष्ठकला, धातु कर्म तथा पाषाण मूर्तिकला कठोर माध्यम होने के कारण अत्यधिक टिकाऊ हैं परंतु चूने की कला में चूना अत्यधिक नर्म होने के कारण इससे बनी वस्तुएँ अथवा अलंकरण अधिक दिनों तक नहीं रहते। इस कारण इस कला परंपरा तथा युग के प्रतिनिधित्व का निर्धारण करना कठिन हो जाता है।

ईरान में इसलाम के प्रारंभिक चरण से प्राप्त चूने की कला के अवशेष अत्यधिक साधारण परंतु आकर्षक हैं। अमीर इसमाईल सामानी (9 वीं सदी ई.) का मक़बरा इस कला का अनुपम नमूना है। इसी प्रकार आगामी शताब्दियों से संबंधित शीराज़ में प्राप्त नमूने देखने वाले को सम्मोहित कर देते हैं। इस्फ़ाहान में अर्दस्तान मस्जिद, मुहम्मद सावी की मेहराब जो कि मेहराब-उल-जायतू के नाम से प्रसिद्ध है तथा मेहराब पीर बकरान आदि पर चूने का काम देखते ही बनता है। उनपर कूफी लिपि में सुलेखन किया गया है। ये सुलेखन कला इसी समय प्रकट होती है। कुछ काल उपरांत इस्फ़ाहान, कज़वीन तथा हमादान का चूने में बहुत सा कार्य किया गया। धीरे-धीरे ईरान इस कला के लिए प्रसिद्ध हो गया तथा चूने के काम से युक्त ईरान के भवन समस्त विश्व में प्रसिद्ध हुए। सफ़वियों, ज़ंद तथा क़ाज़ारों के काल में यह कला आम घरों में भी प्रयोग में लाई जाने लगी।

एक अन्य कलावस्तु जिसमें धातु की खनक है वह है ईंट। भट्टी में पकाई हुई ईंट विभिन्न आकारों में बनाई जाती थी। बनने के बाद उन्हें गढ़ा जाता था तथा विभिन्न भवनों में प्रयोग किया जाता था। रंगीन चीनी मिट्टी की टाइलों के साथ इनका असाधारण प्रयोग किया जाता था। इन ईंटों से बनी दीवारों पर सुलेखन का प्रयोग भी होता था।

## वास्तुकला

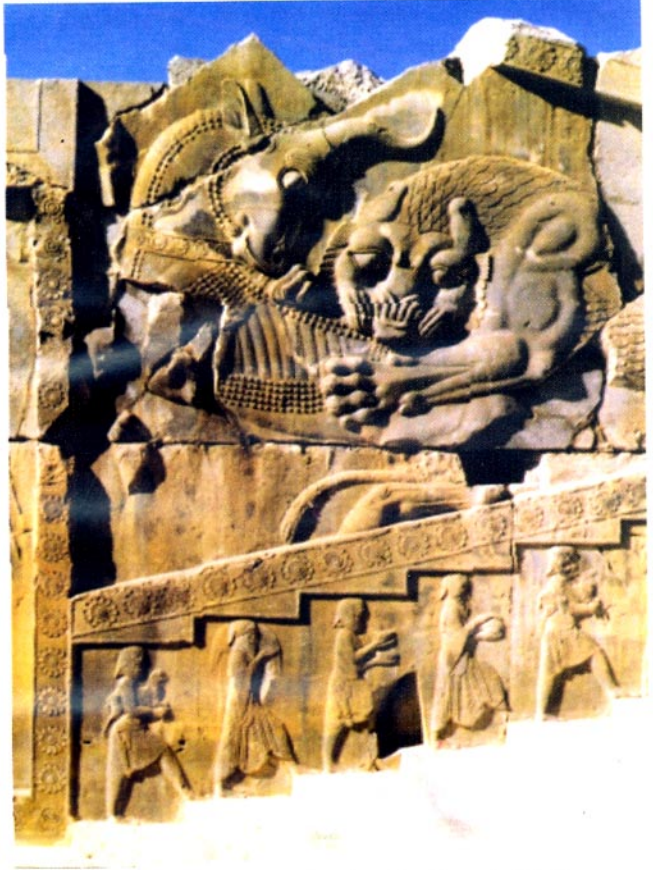
उल्लिखित विभिन्न कलाएँ वस्तुतः वास्तुकला का ही अंग हैं। अतः वास्तुकला के संदर्भ में इनकी पुनः चर्चा अपरिहार्य है। वास्तुकला यद्यपि ललित कला की शाखा मानी जाती है परंतु अपने बृहत् एवं उपयोगी रूप अनुसार एक स्वतंत्र कला है। ईरानी वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूनों से ज्ञात होता है कि इसका आधार केवल पत्थर, चूने एवं मिट्टी से निर्मित भव्य एवं विशाल इमारतें ही नहीं बल्कि उसमें अंतर्निहित विभिन्न कलाओं का सार भी है। विभिन्न युगों के द्रुत विकास क्रम में वास्तुकला विकसित हुई और मानव की परिवर्तनशील आवश्यकताओं के अनुरूप बनी। शूश शहर से 30 कि.मी. दूर दक्षिण-पूर्व में चगाज़वील का एक अग्नि मंदिर ज़ीगूरात है। यह ईरान में हस्तलब्ध सबसे प्राचीन इमारत है। इसका निर्माण समय ईलामी शासक अंताश गाल (1250 वर्ष ई.पू.) का काल माना गया है। यह मंदिर ईलामी देवता इंशूशीनक का देव स्थल है। बुर्जनुमा सीढ़ीदार यह मंदिर ईंटों से निर्मित चतुष्कोणीय है। इसमें पाँच तल रहे होंगे लेकिन अब मात्र तीन शेष हैं। इसकी ऊँचाई लगभग 49-52

मी. है। ज़ीगूरात में गोल डाट, परिक्रमा पथ, कमरे, मक़बरे तथा नालियाँ आज भी विद्यमान हैं। वास्तुकला की दृष्टि से यह मिस्र के पिरामिड की भाँति है। मध्य-एशिया या लघु एशिया में खोजे गए इस प्रकार के भवन प्रायः एकमज़िला ही हैं जबकि यह बहुमज़िला है। यहाँ पर मिट्टी से बनी एक बैल की प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसपर चिकनी और चमकदार तह है तथा उसपर ईलामी लिपि में कुछ लिखा हुआ है। संभवतः यह प्रतिमा द्वार मण्डप के ऊपर लगी हुई होगी। इसी स्थल से काले पत्थर तथा शीशे की बनी हुई कुछ अन्य वस्तुएँ भी हस्तलब्ध हुई हैं। यहाँ से ईलामी लिपि में लिखे शिलालेख से इस इमारत के निर्माण काल संबंधी महत्वपूर्ण सूचनाओं का पता चला है।

**माद काल**—ई.पू. सहस्र वर्ष संबंधी पुरातत्त्व संबंधी अवशेषों की अमूल्य निधि हसनलू है। यह स्थल नक़्दे नगर के निकट अरुमिए झील के पास स्थित है। हसनलू की गढ़ी या दुर्ग एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। इसमें स्थित भव्य विशाल कमरे, स्तून, दालान, गलियारे आदि चूने, मिट्टी तथा पत्थर के मिश्रण से निर्मित हैं जिसका प्रारंभिक काल ईरानी वास्तुकला के इतिहास में नवीं शताब्दी ई.पू. माना गया है। यह दुर्ग ईरानी वास्तुकला के विकास क्रम का महत्वपूर्ण संगे मील है। स्तून अथवा खंभों पर आधारित पुरातत्त्व कालीन इमारतों में माद वंश कालीन (800 वर्ष ई.पू.) पहाड़ों में स्थित कुछ दख्खे (समाधियाँ) हैं। माद वंश कालीन दख्खे ईरान के विभिन्न क्षेत्रों में विद्यमान हैं। वास्तुकला के विकास क्रम का एक अन्य महत्वपूर्ण स्थल प्राचीन हगमताना (वर्तमान हमादान) नगर है। पाँच शती ई.पू. का यह नगर, हेरोडोटस के अनुसार, गरिमाशाली एवं भव्य इमारतों का अजीब संग्रहालय है। यहाँ का किला सात दुर्गों का समूह है। प्रत्येक दुर्ग पर सात प्रकार के कंगूरे बने हुए हैं। इनके रंग श्वेत, काला, बैंगनी, नीला, लाल, संतरी, रजत तथा स्वर्णिम हैं। इनमें अंतिम दुर्ग प्रमुख राजप्रासाद है। राजकीय कोषनिधि भी इसी के भीतर है। यह रहस्यमय किला अपने आप में एक अद्भुत भवन है। संभवतः सात रंग एवं सात दुर्ग सात नक्षत्रों को इंगित करते हैं।

**हिख़ामंशी काल**—हिख़ामंशियों की सर्वोत्तम सत्ता का द्योतक उनके शासनकाल में निर्मित विशाल प्रासाद एवं भवन है जिनके अवशेष आज भी अपने भव्य अतीत की गाथा कहते हैं। इन भव्य इमारतों में सर्वप्रथम 550 वर्ष ई. पू. में निर्मित पासारगाद उल्लेखनीय है। यह हिख़ामंशियों की प्रथम राजधानी थी। इसको हिख़ामंशी वंश के संस्थापक कोरुश के आदेश से बनाया गया था। इसमें दरबार, आगंतुकों का स्वागत कक्ष, ख़ास महल तथा पूर्वी महल प्रसिद्ध है। प्रत्येक भवन एक विशाल चबूतरे के ऊपर बनाया गया था। पासारगाद द्वार के नाम से प्रसिद्ध पूर्वी महल का मुख्य कक्ष आठ पाषाण खंभों की दो पंक्तियों पर आधारित लकड़ी की छत का था। इन खंभों पर विशाल मानवाकृतियाँ बनी हुई थीं। शेष रह गए अवशेषों में से एक खंभे पर आज भी एक पंखवृक्त बरछी लिए हुए विशाल मानवाकृति स्पष्ट है। पासारगाद के उपरांत हिख़ामंशी कालीन वास्तुकला के विकास क्रम का अगला पड़ाव किस्मान शाह का बीस्तून है। पत्थरों पर की गई उत्कृष्ट हस्तकला के यहाँ अनेक उदाहरण हैं। पासारगाद के उपरांत दारयूश प्रथम ने अपनी राजधानी तख़्ते-जमशीद में स्थानांतरित की। यहाँ निर्मित प्रासादों की दास्तान दारयूश द्वारा लिखवाए गए शिलालेखों से प्राप्त होती है। उसके अनुसार प्रासाद के निर्माण के लिए भवन सामग्री ईंट, चूना तथा पत्थर आदि ईरान के विभिन्न क्षेत्रों से लाई गई। राज एवं कारीगरों में ईरानियों के अतिरिक्त मिथ्री, बाबुली, मादी तथा लीदी भी शामिल थे। यहाँ के अवशेषों में चिकनी तह वाली ईंटें भी प्राप्त

हुई हैं जिन्हें दीवार में पैनल के लिए प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त इनसे विभिन्न आकृतियाँ भी बनाई गई हैं जिनके अनेक नमूने हमें तख्ते-जमशीद के आपादान महल से मिले हैं। तीसरी भव्य इमारत तख्ते-जमशीद है जिसे दारयूश प्रथम के आदेश से ही निर्मित किया गया। सिकंदर ने दारा द्वितीय के काल में इस महल को नेस्तोनावूद कर डाला। सन् 1888 ई. के उपरांत हुए उत्खनन कार्यों से इसमें समाहित अनेक महलों का पता चला। जिनमें प्रमुख काखे-आपादाना (आपादाना का महल) है। इसके अतिरिक्त काखे-सद-सतून, काखे-सेह-दरवाजे, काखो-तचर, काखो-हदीयश, खशायार-शाह का महल आदि भी हैं। इस भव्य प्रासाद का निर्माण एक विशाल चबूतरे पर किया गया जिसपर पहुँचने के लिए 148 सीढ़ियाँ हैं तथा सारा प्रासाद पत्थर से निर्मित है। सीढ़ियों तथा गगनचुंबी खंभों पर उत्कीर्ण उभरी हुई चित्रकारी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पत्थर पर अलंकृत उत्कीर्ण कार्य केवल विशिष्ट कला



तख्ते-जमशीद स्थित काखे हदीयश के पूर्वी द्वार की सीढ़ियों

का ही द्योतक नहीं अपितु ईरान की प्राचीन संस्कृति का दर्पण भी है। सीढ़ियों की दीवारों पर बने चित्र इतिहास की विभिन्न घटनाओं का व्याख्यान करते हैं। पत्थर पर बने इन उत्कीर्ण चित्रों में हिखामंशी राज्य के अधीन विभिन्न राज्यों के दूतों को भेंट एवं राजस्व समर्पित करते हुए दर्शाया गया है। आपादान महल की सीढ़ियों पर यह उत्कीर्ण कार्य देखते ही बनता है। भाले लिए हुए द्वारपालों के सजीव उत्कीर्ण चित्र खंभों की शोभा हैं। हिखामंशी कालीन अवशेषों में वीस्तून का शिलालेख भी उल्लेखनीय है। यह शिलालेख दारयूश प्रथम से संबंधित है। यह सपाट-

ऊर्ध्वमुखी पहाड़ी है जिसके मध्य भाग में कीलाक्षर पद्धति में लिखा हुआ है। इसमें दारयूश ने अपने काल की मुख्य घटनाओं का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त यहाँ दारयूश एवं अन्य बारह विभूतियों की प्रतिमा भी है जो इस स्थल को दर्शनीय बनाने में अति महत्वपूर्ण योगदान देती है।

**अशकानी एवं सासानी काल**—सिकंदर के उत्तराधिकारियों के उपरांत सिंहासनारूढ़ हुए अशकानी अर्थात् पारती वंश (250 ई.पू.) के प्रारंभिक काल की वास्तुकला का यूनानी वास्तुकला से प्रभावित होना व्याभाविक था। लेकिन कुछ काल उपरांत अशकानियों की वास्तुकला में परिवर्तन उजागर होने शुरू हुए। भवनों में पत्थर के ऊपर आकृतियों बनाने में स्तुको पलस्तर कार्य होना मुख्य परिवर्तन था। इसी प्रकार ताकदार इमारतों के निर्माण का श्रौगणेश करने का श्रेय भी अशकानी कुशल कारीगरों को जाता है। चौकोर बृहत् आँगन तथा उसके चारों ओर बने विशाल कमरों की वास्तु भी अशकानियों के काल की देन है। अशकानी कालीन भित्ति चित्रों के लिए प्रसिद्ध ख्वाजू पहाड़ का प्रार्थना स्थल विभिन्न वास्तु संबंधी परिवर्तनों का दर्शनीय स्थल है। अशकानी काल ताकदार अवशेषों में किरमान शाह मार्ग पर पाताल पहाड़ की घाटी में ज़हाब पुल पर बनी विशाल ताक़ तथा हमदान स्थित कंगावर का अनाहिता मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अशकानियों के ताक़ वास्तु शिल्प कार्य को सासानियों (सन् 226-651 ई.) ने अभूतपूर्व उन्नति एवं प्रगति प्रदान की। सासानिकालीन वास्तुकला के विशिष्ट तत्त्वों में गुंबदों का निर्माण (जिनका अधिकांश प्रयोग अग्नि मंदिर के लिए किया गया), स्तुको पलस्तर सामग्री का प्रचुर प्रयोग, भित्ति चित्रकारी में हिखामंशी कालीन प्रभाव (क्योंकि सासानी स्वयं को हिखामंशी वंश से संबंधित कहते थे) तथा मोज़ाईक कार्य सम्मिलित हैं। सासानी काल में द्रुत गति से प्रगति हुई। वास्तुकला का प्रभाव यूरोप की वास्तुकला में भी झलकता है। सासानी काल की वास्तुकला फ़िरोज़ाबाद तथा मदायन के भव्य क़िलों एवं प्रासादों में देखी जा सकती है। इनके अतिरिक्त खुज़िस्तान का कर्खा-ऐवान, तेहरान के निकट स्थित तप्पे-मील, काशान का नयासिर अग्नि मंदिर, तख़्ते-सुलेमान का आज़र गुश्तासब अग्नि मंदिर और क़स्से-शीरी की इमारतें दर्शनीय हैं। सासानियों के काल में संरक्षित अन्य कलाओं में वास्तुकला को विशिष्ट संरक्षण प्राप्त हुआ। वास्तुकला में नए-नए आयाम इसी काल में प्रगट हुए जिनका प्रभाव आने वाली शताब्दियों तक जीवंत रहा।

**इसलामीकाल**—सातवीं शताब्दी में इसलाम धर्म के ईरान में प्रचलन उपरांत प्रत्येक क्षेत्र में परिवर्तन प्राकृतिक था। इसलाम-पूर्व ईरान के धार्मिक स्थलों में आहूरमज़दा की उपासना की जाती थी। इसलाम धर्म के आगमन के बाद अग्नि मंदिरों को मस्जिदों में परिवर्तित किया गया। प्रारंभिक इसलामी दौर की मस्जिदें साधारण तथा अलंकरण रहित थीं। इसके प्रारूप में चारों ओर बनी हुई ताकों के मध्य स्थित समकोणीय प्रांगण दक्षिण मुखी, अर्थात् क़िबला में एक शबिस्तान (रात्रि उपासना स्थल) जिसकी छत (प्रायः ढलवाँ) खंभों पर टिकी होती थी। अधिकांश अग्नि मंदिरों में कम परिवर्तन कर उनको एकल खुदा की उपासना हेतु केवल उचित एवं आवश्यक रूप प्रदान किया गया। सासानी कालीन वास्तु प्रारूप पर बनी गुंबदें अष्टकोणीय खंभों पर आधारित होती थीं। स्थानीय वास्तु प्रभाव के कारण इनमें सासानी दौर की शैली अनुसार मेहराबों की संख्या भी चार थी। अतः प्रारंभिक इसलामी काल में निर्मित (अथवा परिवर्तित) मस्जिदों की वास्तुकला सासानी कालीन वास्तुकला के निकट थी। इस काल की शेष मस्जिदों में दामगान की तारीक़ख़ाना है। इसका निर्माण समय द्वितीय शताब्दी हि. (आठवीं

सदी ई.) माना जाता है। इसमें आगामी वर्षों में कुछ भाग शामिल किए गए जैसे, इसकी मीनार सलजूकियों के दौर में बनी जिसका प्रमाण उसकी ईंटों पर कूफी लिपि में लिखा हुआ शिलालेख है। इसी प्रकार प्राचीन मस्जिदों में तीसरी शताब्दी हि. कालीन (आले बुईया काल) की नायन शहर की प्राचीन मस्जिद है। इसमें चतुष्कोणीय प्रांगण है जिसके तीन पक्ष खंभों द्वारा पृथक् किए गए हैं। उत्तर में बरामदे तथा आँगन सहित कमरे (हॉल) आज भी विद्यमान हैं।

**सलजूकी काल—सलजूकी परिवार का संबंध गुज़ तुर्कों से था। इस कबीले का उद्गम स्थल माज़िंदरान का निकटवर्ती क्षेत्र माना जाता है। राजनीतिक स्थिरता के कारण इनके राज्य काल में विभिन्न कलाओं को पुनः प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इस्फ़ाहान, मर्व, नीशाबूर, हिरात, रे (तेहरान) आदि इस काल में व्यवसाय एवं कला के प्रमुख केंद्र थे। वास्तुकला को इस काल में अभूतपूर्व संरक्षण प्राप्त होने के कारण नये-नये आयाम इस कला में प्राप्त हुए। इस काल की वास्तुकला में मस्जिदों में बड़े-बड़े दालान, चारों ओर छतदार विस्तृत हॉल, चौकोर गुंबद विशेष नवीन तत्त्व हैं। ये सभी तत्त्व धार्मिक विषयाधारित थे। मस्जिदों में शबिस्तानों का संयोजन इसी काल की देन है। इस्फ़ाहान, गुलपायगान तथा उर्दिस्तान की जामा मस्जिदों में विद्यमान शबिस्तान इसी काल में निर्मित हुए। कारवां सराय का निर्माण भी इसी काल में पुनः प्रारंभ हुआ। व्यवसाय को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से अनेक कारवां सरायों का निर्माण इस काल में हुआ। इसी काल की शेष रह गई कारवां सरायों में सरख्स के दक्षिण में 70 कि.मी. के फ़ासले पर स्थित रखाते-शरफ़ (अरबी शब्द रवात के अर्थ भी सराय के लिए प्रयुक्त होते हैं) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके केंद्र में स्थित वृहत् आँगन के चारों ओर बने बरामदों के उपरांत छोटे कमरे हैं।**

सलजूकी काल में बने मक़बरों की दो शैलियाँ हैं : बुर्ज वाले तथा गुंबददार। मर्व स्थित सुलतान संजर का मक़बरा गुंबददार है। इसमें ईंटों और काशीकारी की कला दर्शनीय है। बुर्ज वाले मक़बरों में मरागा तथा उरुमिये के सलजूकी कालीन मक़बरे भी उल्लेखनीय हैं। ईंटों, एवं टाइल (काशी) के खूबसूरत कार्य के अतिरिक्त अलंकृत जालियाँ बनाने की कला भी इस काल की वास्तुकला का अभिन्न अंग हैं। रोमन साम्राज्य के प्रभावाधीन अलंकरण में शीशे का काम भी देखा जा सकता है।

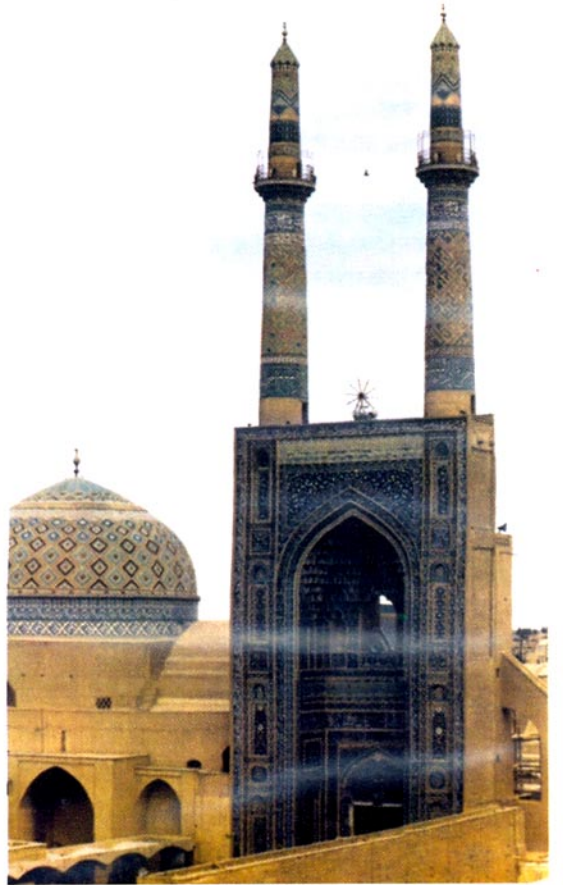


सुलतानिया स्थित अलजायतू का मक़बरा

**ईलखानी एवं तैमूरी काल**—सलजूकियों की भाँति ईलखानी जाति का संबंध भी कवीलों से था उनकी अपनी कोई कला एवं संस्कृति नहीं थी। लेकिन उनके काल में विभिन्न कलाओं को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। इन कलाओं में पुस्तक अलंकरण, चित्रकारी तथा वास्तुकला विशेषतः राजकीय संरक्षण की कृपा पात्र बनीं। वस्तुतः मुगलों के काल में संरक्षण प्राप्त वास्तुकला में स्थानीय, धार्मिक तथा सामाजिक तत्त्वों की प्रधानता रही। इस काल के प्रमुख भवनों में सुलतानिया, मशहद की मस्जिदे-गौहरशाद तथा तबरेज़ की कबूद (नीली) मस्जिद उल्लेखनीय हैं।

**सफ़वी काल**—इसलामोत्तर कालीन ईरान में सफ़वी काल में सभी कलाएँ अपने चरमोत्कर्ष पर थीं। आरंभ में सफ़वियों की राजधानी कज़वीन थी शाह अब्बास प्रथम के दौर में राजधानी इस्फ़ाहान बनी। इस नगर को एक नया रूप प्रदान किया गया। यहाँ बनाए गए बाज़ार, प्रासाद, मस्जिदें, बाग, पुल तथा विस्तृत सड़कों ने राजधानी को नया रूप प्रदान किया। बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा व्यवस्था का विशेष रूप से ध्यान रखा गया। मस्जिदों की दीवारें भी काफ़ी ऊँची रखी गईं। प्रत्येक भवन में चित्रित काशीकारी का प्रयोग हुआ जिसे हफ़्तरंग (सात वर्ण) कहा जाता था। गचबरी-ए-मक़रनसकारी (फलस्तर) से भवनों के मुखद्वार पर पारदर्शी टाइलों को लगाया गया है। यह सामंजस्य सफ़वी काल में निर्मित अधिकांश इमारतों में देखा जा सकता है। आवासीय प्रासादों में चित्रित टाइल कार्य के साथ-साथ लकड़ियों पर किया गया अलंकरण कार्य भी दर्शनीय है।

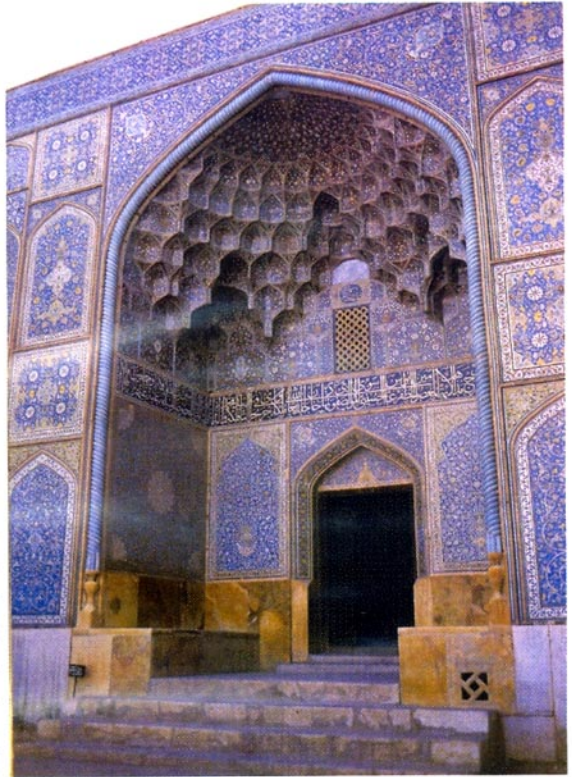
मैदाने-नक्शे-जहान इस्फ़ाहान स्थित आली क़ाफ़ू तथा चहल स्तून उपरोक्त दोनों कलाओं के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये भवन सफ़वी काल की चरम धनाढ्यता, धार्मिक नीति तथा सामाजिक परिस्थितियों के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। सफ़वी कालीन संबंधी कज़वीन स्थित महल एवं क़िले



जामा मस्जिद यज़द

तथा इस्फ़ाहान की मस्जिदे-लुत्फुल्लाह, आली क़ाफ़ू का महल, चहल स्तून (प्रासाद), हश्त विहिश्त (महल), पुले-खाजू आदि इस काल की वास्तुकला के जीवंत उदाहरण हैं। अन्य नगरों में स्थित इस काल के भवनों में अर्दबील स्थित शेख़ सफ़वी का मक़बरा तथा मशहद के रोज़े (इमाम रिज़ा (अ) का मक़बरा) में बनी अधिकांश इमारतें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन भवनों में किया गया धातुकार्य, जाली कार्य, सुलेखन स्वर्णलेपन, काष्ठकार्य दर्शनीय है।

**अफ़शार एवं ज़ंद काल—नादिर शाह**  
अफ़शार के अस्तित्व में आने के उपरांत सफ़वी वंश का हास हुआ। उसने स्वयं अस्तित्व को प्रधानता दी। उसके वंश तथा आगामी ज़ंद काल में ईरानी वास्तुकला में कोई दृष्टिगोचर परिवर्तन नहीं हुआ। नादिर शाह द्वारा निर्मित बुर्जनुमा चौकियाँ इस काल की वास्तुकला के नमूनों में से हैं। नादिर शाह के उपरांत करीम ख़ान ज़ंद ने शीराज़ नगर को अपनी राजधानी बनाया। उसी काल से संबंधित शीराज़ शहर के मध्य स्थित क़िला, मस्जिद, हमाम तथा बाज़ार ज़ंद कालीन वास्तुकला के उदाहरण हैं। इनमें सफ़वी कालीन तत्वों को भली-भाँति देखा जा सकता है।



शेख़ लुत्फुल्लाह मस्जिद का मुख्य द्वार—इस्फ़ाहान

**क़ाजारी एवं आधुनिक काल—क़ाजारी काल** की ईरानी वास्तुकला पुरातन एवं आधुनिक शैली का संगम है। राजनीतिक एवं भौगोलिक परिवर्तनों के कारण इस काल को सफ़वी कालीन वास्तुकला के समकक्ष नहीं रखा जा सकता अपितु सफ़वी कालीन वास्तुकला संबंधी अनेक आयाम इस काल की वास्तुकला में देखे जा सकते हैं। अधिकांश शाही भवनों का निर्माण नासिरुद्दीन शाह के काल में हुआ। शाही प्रासाद के हॉल (क़मरों) के मध्य स्थित ऊर्ध्वाधुखी खुली सीढ़ियाँ रूसी वास्तुकला की द्योतक हैं लेकिन शीशे का काम, काशीकारी, गचकारी तथा दीवारों पर इज़ारा बंदी (डीडो वर्क) विशुद्ध ईरानी शैली का है। तेहरान स्थित हज़रत अब्दुल अज़ीम का मक़बरा, मस्जिदे-इमाम (शाह या सुलतानी) तथा मस्जिदे सिपहसालार (मुतहरी) इसी काल की मिलीजुली वास्तुकला के नमूने

हैं। व्यापार एवं विभिन्न व्यवसायों को इस काल में विशेष उन्नति प्राप्त हुई। उनके लिए निर्मित व्यावसायिक केंद्रों की इमारतें भी इस दौर की वास्तुकला को प्रगट करती हैं। उपरोक्त शाही एवं व्यावसायिक भवनों में प्रयुक्त काशीकारी पर की गई चित्रकारी, शीशाकारी एवं लकड़ी का काम दर्शनीय है।

**भित्ति चित्रकारी**—ईरान में दीवारों पर चित्रकारी की प्रथा भी मुख्य कलाओं में गिनी जाती रही है। इस्लामी काल, हिखामंशी काल आदि के उदाहरण अब उपलब्ध नहीं हैं परंतु इस्लामी युग में इसका प्रचलन अधिक हो गया। राजप्रासादों एवं साधारण भवनों में दीवारों पर विभिन्न दृश्यावलियों तथा प्रसिद्ध शायरों के शेरों के सुलेखन का प्रयोग होने लगा। प्रसिद्ध लेखक साद तथा नासिर खुसरो ने अपने लेखों में इन चित्रों का उल्लेख किया है। नीशापूर, मशहद, इस्फाहान तथा दामगान आदि स्थान भित्ति चित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं।

**काशीकारी (टाइल निर्माण कला)**—ईंटों के अतिरिक्त अन्य कलावस्तु चीनी मिट्टी की टाइलें हैं। टाइल निर्माण तथा उस पर चित्रकारी को काशीकारी के नाम से जाना जाता है। यह ईरान की प्राचीन कला है। इसमें विभिन्न प्रकार के अलंकरणों तथा रंगों का प्रयोग किया जाता है। सुल्तानिया स्थित ईलखानी बादशाह सुलतान मुहम्मद जायतू का मक़बरा काशीकारी का अद्भुत प्रदर्शन है। इसी काशीकारी में विभिन्न अरबी सुलेखन विधाओं, जैसे कूफी, नस्तालीक़ इत्यादि शैलियों को बहुत ही रंग-बिरंगा एवं अद्भुत अलंकरण के साथ प्रयोग किया गया है। नीली तथा लाजवरदी रंग की टाइलें अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इस्लामी काल में सफ़वियों के युग में यह कला अपने शीर्ष स्थान पर पहुँच गई थी। विभिन्न भवनों, राजप्रासादों, मस्जिदों, मक़बरों आदि में इनका अत्यधिक प्रयोग हुआ। इस्फाहान में काशीकारी की कला के सर्वोत्तम नमूने दृष्टिगोचर होते हैं। इस्फाहान के अतिरिक्त शीराज़ एवं मशहद तथा अन्य सांस्कृतिक स्थल काशीकारी के विशिष्ट केंद्र हैं। इन पर विभिन्न अलंकरण तथा ज्यामितीय बेलबूटे, सुलेखन तथा कूफी एवं अन्य शैलियों में तवरंज़ की मस्जिद अपने हल्के नीले रंग की काशीकारी एवं सज्जा के लिए प्रसिद्ध थी परंतु सन् 844 हि. में भूकम्प से यह ध्वस्त हो गई। शाह अब्बास के काल की शाह लुस्फुल्लाह मस्जिद एवं मक़सूद बेग की मस्जिद तथा शाह मस्जिद का मुख्य द्वार एवं क़ैसरिया मस्जिद के मुख्य द्वार अपनी अद्भुत काशीकारी के लिए प्रसिद्ध हैं। ईरान से काशीकारी की कला का निर्यात हिंदुस्तान में भी हुआ परंतु जलवायु परिवर्तन के कारण ईरानी रंगों की सी चमक हिंदुस्तानी



क्राजार कालीन एत की काशीकारी का एक नमूना, शीराज़



काशीकारी का अनुपम उदाहरण, वकील मस्जिद, शीराज़

काशीकारी में उभरकर न आ सकी।

**चित्रकला**— चित्रकला ईरान की एक अन्य प्रसिद्ध ललित कला है। कला एवं संस्कृति के संरक्षक शाह इसमाईल सफ़वी के काल में चित्रकला को राजकीय संरक्षण तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उस काल में एक प्रसिद्ध चित्रकार वेहज़ाद जिसका जन्म बुखारा में हुआ था, पीर सैयद अहमद का शिष्य था तथा उसकी कर्मस्थली हेरात थी। वह एक अत्यधिक दक्ष चित्रकार था तथा उसके कारण हेरात गुरुकुल अपनी चित्रकला की श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध है। वेहज़ाद का गुरु सैयद अहमद, समरकंद के जुनेद का शिष्य था। जुनेद शीराज़ शैली का प्रयोग करता था तथा वह स्वयं मीर अली शीराज़ी का शिष्य था। वेहज़ाद की ईरानी चित्रकला की सूक्ष्मता प्रवीणता के साथ स्पष्ट दृष्टिगोचर है, किन्तु उसकी चित्रकला पर मंगोल-चीनी कला का प्रभाव भी है। शाह ताहमासब ने वेहज़ाद को अपने संरक्षण में रखा तथा उसे उसकी कला के लिए सम्मानित किया तथा कुछ लोगों को उसने उसका शिष्य बनाया जिन्होंने बाद में वेहज़ाद की शैली को सफ़वी शैली की अन्य वस्तुओं, काशीकारी तथा क़ालीन बुनाई में उतारा। क़ासिम अली, शहरज़ादे ख़ुरासानी, मीर मुसव्विर सुलतान, आगा मीर तथा मुज़फ़्फ़र अली जो कि वेहज़ाद शैली के अन्य कलाकार हैं, सर्वदा सफ़वी संरक्षण में रहे। वेहज़ाद शैली के बाद सन् 914 हि. में उज़बेक अतिक्रमण उपरांत सफ़वी चित्रकार बुखारा की ओर चले गए। उनका गुरुकुल वहाँ भी सफ़वी शैली के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसके प्रसिद्ध चित्रकार मुहम्मद मोमिन, मुहम्मद मुज़हिब तथा अब्दुल्ला नक्काश आदि थे। बुखारा में रहने के कारण मुहम्मद मुज़हिब को बुखारा शैली का चित्रकार भी कहा जाता है। ये सभी शिआ थे।



हुमायूँ एवं शाह तहमासब (दीवार चित्रकारी), काख़े चहल स्तून, इस्फ़ाहान

सफ़वी चित्रकला शैली को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम तबरेज़ शैली जो शाह तहमासब के राज्य काल में प्रारंभ हुई तथा शीघ्र ही अपने शीर्ष पर पहुँची। इस शैली के चित्रकारों में बेहज़ाद, सुलतान मुहम्मद, महमूद मुज़हिब, सैयद अली सुलतान मुहम्मद, आगा मीर, मिर्ज़ा अली, मज़हर अली, मीर सैयद अली, अब्दुस समद आदि विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त सैयद पीर नक्काश, शाह मुहम्मद, दोस्त मुहम्मद तथा शाह कुली तबरेज़ी अन्य प्रसिद्ध चित्रकार हैं। शाह तहमासब का काल ईरानी चित्रकला का स्वर्णयुग था। इस युग में बग़दाद गुरुकुल तथा सफ़वी कालीन इस्फ़ाहानी गुरुकुल के बीच चित्रकला का आदान-प्रदान हुआ। उस युग का महान् चित्रण कार्य सुलतान मुहम्मद द्वारा चित्रित निज़ामी गंजवी का ख़म्सा तथा फ़िरदौसी का शाहनामा था। ये इतने उत्कृष्ट हैं कि इन्होंने आने वाले अन्य चित्रकारों का मार्गदर्शन किया है। वस्तुतः यह कृतियाँ तथा अन्य कई साहित्यिक कृतियाँ चित्रकला के उत्कृष्ट स्रोत बने। इसी कारण चित्रण कला ने इन कृतियों को अमर भी कर दिया। निज़ामी द्वारा चित्रित ख़म्सा लंदन संग्रहालय में है।

**चित्रों पर सुलेखन कला**—सफ़वियों के युग में सुलेख सहित चित्रों के कलाकार शाह मुहम्मद नीशापूरी, मीर अली तबरेज़ी, सुलतान मुहम्मद नूर, हाजी मीरक ख़तात, मीर अमाद हसनी और अली रज़ा अब्बासी आदि अपने हस्तलेखों के लिए प्रसिद्ध थे। मीर अमाद नस्तालीक़ के माहिर उस्ताद थे और उन्होंने इस कला को अत्यधिक ऊँचाई तक पहुँचाया।

ईरान की तत्कालीन राजधानी तबरेज़ ईरानी कला का प्रमुख केंद्र थी। इस राजधानी में कालीन के अलंकरण तथा काशी पर अत्यधिक सुंदर अलंकरण की परंपरा खूब फल-फूल रही थी। तदुपरांत शाह अब्बास अपनी राजधानी इस्फ़ाहान ले गया तथा इस्फ़ाहान को तबरेज़ के स्थान पर कला का केंद्र बनाया। इस्फ़ाहान में अपने शीर्ष पर पहुँची चित्र कला शैली सफ़वी काल की द्वितीय शैली थी। शाह अब्बास के युग में काशीकारी के लिए इस्फ़ाहान अत्यधिक प्रसिद्ध हो गया। इस युग में कालीन बुनाई, चित्रित पुस्तकें इत्यादि में कोई विशेष उन्नति न हुई परन्तु धातुकर्म में अधिक उन्नति हुई। ईरानी कला पर पश्चिमी प्रभाव शाह अब्बास के काल में पड़ा। इस्फ़ाहान में दीवारों पर बने विभिन्न चित्रों में पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट झलकता है। उस युग के कुछ प्रसिद्ध चित्रकार हैं : आगा रिज़ा, रिज़ा अब्बासी, मुसव्विर मुहम्मदी और रिज़ा अब्बासी के शिष्यों में, उसका पुत्र शफी अब्बासी, अफ़ज़ल मुहम्मद, कासिम तबरेज़ी। मुहम्मद युसुफ़ इन सबमें प्रमुख था। कहा जा सकता है कि उसके पश्चात् शुद्ध ईरानी शैली का लोप हो गया।

शाह अब्बास द्वितीय पश्चिमी कला का प्रशंसक था। उसने मुहम्मद ज़मान के संरक्षण में कई लोगों को इटली भेजा। मुहम्मद ज़मान ने अपना धर्म बदल लिया और निज़ामी के ख़म्से को पश्चिमी शैली में चित्रित किया। परन्तु उन्होंने ईरानी शैली को भी बनाए रखा। इस काल को सफ़वी कला के पतन का युग भी कहते हैं। इस युग में कालीन बुनाई तथा काशीकारी में कुछ विशेष उन्नति न हुई तथा चित्रकला धीरे-धीरे पश्चिमी ईरानी शैली में परिवर्तित हो गई अथवा ज़ंद तथा क़ाज़ार शैली के नाम से विख्यात हो गई।

ज़ंद एवं क़ाज़ार काल तैलचित्रों का युग है। इस काल में क़ाज़ार शासक, दरबारीगण, सामान्यजन, नृत्य, बाज़ार आदि के दृश्य तथा कल्पना के द्वारा बनाए गये चित्र मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त धार्मिक चित्र भी बनाए

गये। क़ाज़ार युग के बहुत से उदाहरण अप्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त पानी के रंगों से कागज़ पर प्राकृतिक दृश्य, पेड़-पौधे तथा विभिन्न पुष्पों के चित्र बनाए गये। इसके अतिरिक्त घरों में भित्तियों पर अलंकरण के लिए बनाए गये चित्र एवं शीशे पर तैल चित्र तथा क़लमदान और पुस्तकों की जिल्दों पर चित्रों को बनाने की भी परंपरा थी। ज़ंद और क़ाज़ार शासक युग की चित्रकला वह ईरानी चित्रकला थी जिसने अपने अंदर पश्चिमी चित्रकला को आत्मसात् कर लिया था। इस दौर की चित्रकला में लाल, संतरी तथा पीले रंग का वर्चस्व दृष्टिगोचर होता है। हरे तथा नीले रंग का इस्तेमाल कम दिखाई पड़ता है। ज़ंद कालीन चित्रकारों में मुहम्मद ज़मान की कलाकृतियाँ उल्लेखनीय हैं। प्रारंभिक क़ाज़ारी कालीन ईरान में यही विशिष्टताएँ जारी रहीं। लेकिन कुछ समय उपरांत क़ाज़ारी कालीन चित्रकला में नए तत्त्व उभरे। इनमें चित्र की पृष्ठभूमि का आकार चौकोर, छोटे क्षेत्रफल में नज़र आता है। अधिकांश चित्रों का मुख्य भाग एक द्वार-मण्डप के नीचे बना नज़र आता है। इस काल के मशहूर चित्रकारों में मिर्ज़ा बाबा, सैयद मिर्ज़ा तथा मुहम्मद सादिक़ उल्लेखनीय हैं। विभिन्न स्थानों से आए उपरोक्त एवं अन्य चित्रकारों ने क़ाज़ारी दरबार में संरक्षण प्राप्त किया। उनके बनाए चित्रों से क़ाज़ारी शैली की स्थापना हुई।

क़ाज़ारी काल में छाया चित्रण (पोर्ट्रेट चित्रण) का प्रचलन प्रारंभ हुआ। छाया चित्रकारी के क्षेत्र में मेहर अली इसफ़ाहानी—फ़तह अली शाह का चित्रकार—अब्दुल्ला ख़ान—अब्बास मिर्ज़ा का चित्रकार—तथा मुहम्मद हसन जिन्होंने बहराम मिर्ज़ा और अन्य शहज़ादों के छाया चित्र बनाए प्रसिद्ध हैं। क़ाज़ारी युग में नृत्यांगनाओं, नटों तथा भायों के अनेक उत्कृष्ट चित्र मिलते हैं। इनसे क़ाज़ारी दरबार में व्याप्त संस्कृति का भी आभास होता है। लेकिन इन चित्रों पर चित्रकारों ने अज्ञात कारणों से हस्ताक्षर अथवा अपने नाम नहीं लिखे हैं। इनके अतिरिक्त साहित्यिक तथा धार्मिक विषयों पर भी इस युग में चित्रकारी हुई। हज़रत यूसुफ़ के जीवनवृत्त संबंधी अनेक चित्र हस्तलब्ध हैं जो दर्शनीय हैं। इसी प्रकार निज़ामी गंजवी की साहित्यिक कृतियों में से शीरी व ख़ुसरो की दास्तान में से अनेक दृश्यों को चित्रकारों ने अपनी क़लम के जादू से जीवंत करने का प्रयत्न किया है। धार्मिक चित्रों में हज़रत अली (अ), इमाम हुसैन (अ) एवं अन्य विभूतियों के चित्रण का प्रचलन बढ़ा। इन चित्रों को बनाने का अधिक श्रेय मेहदी-उल-हुसैनी को दिया जाता है। अन्य विषयों में नगरों, कारीगरों, शिल्पियों तथा क़वाइली लोगों के चित्र (जो इस युग के प्रतिमान हैं) भी मिलते हैं। यूरोपीय शैली से प्रभावित चित्रकारों में अली अकबर मुज़ज़ईनुद्दौला का नाम प्रमुख है यद्यपि उनकी उपलब्ध कलाकृतियों की संख्या अति कम है।

इनके अतिरिक्त मुहम्मद ग़फ़्फ़ारी कमाल-उल-मुल्क को इस काल का सबसे महत्त्वपूर्ण चित्रकार माना जाता है। उसे नासिरउद्दीन तथा मुज़फ़्फ़रुद्दीन क़ाज़ार शासकों का संरक्षण प्राप्त हुआ। वह रिज़ाशाह पहलवी के काल तक जीवित रहा तथा उसे अपने जीवन काल में यूरोप जाने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ की चित्रकारी की नई शैलियों का प्रभाव उसकी चित्रकारी में स्पष्ट झलकता है।

क़ाज़ार युग की अन्य ललित कलाओं में शीशा प्रयुक्त कर अलंकरण करना, चूने की वस्तुएँ बनाना, विभिन्न रंगों से रंगी हुई चूने की वस्तुएँ तथा रंग-विरंगे फ़ानूस आदि की कलाओं ने भी उन्नति की। पत्थर की मूर्तियाँ तथा शिल्पकला भी इस काल में अच्छी अवस्था में थी।

**आधुनिक काल में चित्रकला**—मुहम्मद ग़फ़्फ़ारी कमाल-उल-मुल्क ने अपनी यूरोप यात्रा में फ़्रांसीसी रियेसांस

(पुनर्जागरण) शैली को समझा तथा प्राचीन बैक्ट्रियाई कला के अध्ययन उपरांत वे ईरान वापस आए। स्वदेश लौटकर उन्होंने अपनी चित्रकला शैली में क़ाज़ार युग की कला के मेल से एक नई शैली विकसित की। परिणामस्वरूप ईरान की शुद्ध कलाओं को यूरोपीय कला शैली के आगमन से धक्का पहुँचा। कुछ समय पश्चात् ताहिरज़ादे बेहज़ाद की अध्यक्षता में एक परंपरागत ईरानी शैली का विभाग भी खोला गया जिसे 'सुन्नत गरा' (परंपरावादी) कहा गया। उनकी प्रथम तथा द्वितीय पीढ़ी 'समकालीन युग' का प्रतिनिधित्व करती है। फ़्रांसीसी चित्रकार ऑंद्रे गदार के प्रयत्नों से स्थापित ललित कला महाविद्यालय तथा उनके पश्चात् मोहसिन फ़रूगी की प्रसिद्धि एवं माँग के कारण ताहिरज़ादे बेहज़ाद का मदरसा बंद हो गया। यह विद्यालय बाद में राष्ट्रीय ललित कला विभाग में सम्मिलित कर लिया गया। यही विभाग कुछ समय उपरांत 'विज़ारते-फ़रहंगे-हुनर' (संस्कृति एवं कला मंत्रालय) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पहलवी युग के प्रथम तथा द्वितीय काल में यूरोपीय प्रभाव अत्यधिक हो गया तथा ईरानी कलाकार यूरोप तथा अमेरिका के प्रसिद्ध चित्रों की अनुकृतियाँ बनाने लगे। उन्होंने अपने हस्ताक्षर युक्त कुछ मौलिक चित्र भी चित्रित किए। कभी-कभी परंपरागत चित्र भी बना दिए जाते थे। द्वितीय पहलवी युग में चित्रों को प्रदर्शित करने के लिए कला-वीथियाँ बनाई गईं जिनमें 'तूती' तथा 'बहार' प्रमुख थीं। इसके अतिरिक्त 'अंजुमने-दवीराने-विज़ारते-आमूज़िश' भी कला प्रदर्शन के लिए कभी-कभी कला प्रदर्शनियाँ आयोजित करता था।

पहलवी काल में कला एवं संस्कृति पर पश्चिमी प्रभाव का वर्चस्व था। पारंपरिक इसलामी कलाओं पर कोई ध्यान न दिया गया। इस शैली को अपनाने वाले प्रथम गुट के रूप में जाने जाते हैं तथा द्वितीय गुट में वे लोग हैं जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से परंपरा को बनाए रखा। उनमें प्रमुख थे : जयाद हमीदी, महमूद जवादीपूर, अहमद इसफ़ंदयारी, परवेज़ कलांतरी आदि।

तृतीय गुट द्वितीय गुट की शिष्य परंपरा में अस्तित्व में आया जिसपर यूरोपीय प्रभाव होने के उपरांत भी वे इसलामी परंपरा का पालन करते रहे। यह वर्ग इसलामी क्रांति का समर्थक था। वे अपने चित्रों में धर्म तथा समाज का वास्तविक चित्रण करते थे। चौथा गुट जो कि संख्या में सबसे कम था ईरान की परंपरागत इसलामी कला में आस्था रखता था।

द्वितीय गुट तथा क्रांति के समर्थक चित्रकारों ने यूरोपीय शैली से मुक्त होने का प्रयास किया और ऐसी परंपरा का आविष्कार किया जो यूरोपीय परंपरा के साथ-साथ इसलामी परंपरा को भी मान्यता प्रदान करती थी। इसके प्रमुख चित्रकार थे : ईरज़ इसकंदर तथा हबीब-उल्लाह सादक़ी। तीसरा एवं चौथा गुट इसलामी परंपरा के अधिक निकट आता गया।

वर्तमान इसलामी शासन में चित्रकला को इसलामी नियमों के अनुसार प्रोत्साहित किया गया तथा इसके लिए प्रदर्शनी केंद्र ईरान में बनाए गए हैं। इसके अतिरिक्त समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शन समारोह आयोजित होते रहते हैं। ललित कला विषय ईरान के उच्च शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत आता है।

इसके अतिरिक्त एक अन्य नवीन ललित कला—'ग्राफ़िक कला', जो चित्रकला के ही अंतर्गत आती है, आजकल

ईरान में अत्यधिक प्रचलित है। इस कला के लिए ईरान में प्रदर्शन आयोजित होते रहते हैं। इसके अतिरिक्त 'केरिकेचर', जिसका प्राचीन ईरानी नाम 'शकलक' है, की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी ईरान में आयोजित हो चुकी है। अन्य कलाओं में धातुकला आज भी ईरान की विशिष्ट कलाओं में से एक है। इस कला के अंतर्गत धातु उत्कीर्णन, मुलम्मा कार्य, मीनाकारी, चाकू बनाना और कलम तराशने का हुनर, फ़िरोज़े के नग धातु पर लगाना, ताले बनाना, ज़ेवर बनाना इत्यादि समस्त कलाएँ आज भी ईरान की प्रमुख पारंपरिक कलाएँ हैं। इन्हीं में ख़ातिमकारी भी शामिल है।

**ख़ातिमकारी (काष्ठ अलंकरण कार्य)**—ख़ातिमकारी भी ईरान की विशिष्ट ललित कलाओं में से एक है। लकड़ी की सतह को अलंकृत करने की कला को ख़ातिम कला कहते हैं। मौज़ेक कला की तरह के अलंकार लकड़ी के दो पहलुओं अथवा तीन पहलुओं पर अलंकृत किए जाते हैं। यह कला लगभग 400 साल से शीराज़ तथा इस्फ़ाहान में फल-फूल रही है। इस कला के प्राचीनतम उपलब्ध प्रमाण सफ़वी काल से संबंधित हैं। इस्फ़ाहान स्थित काखे-आलीक़ापू के अंदरूनी भागों में अलंकृत काष्ठ कार्य देखने योग्य है। यद्यपि इस कला का जन्मस्थान शीराज़ शहर है। ख़ातिमकारी के लिए निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता होती है :

विभिन्न प्रकार की लकड़ियाँ, जैसे आबनूस एवं अखरोट आदि की लकड़ी, विभिन्न प्रकार की धातुएँ, जैसे पीतल, चाँदी और कभी-कभी सोना भी प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त सीप, लाख आदि की कलाकृतियों को बनाने के लिए आवश्यक सामग्री तथा बढ़ईग़ीरी के विभिन्न उपकरणों की ज़रूरत होती है।

इसलामी क्रांति के बाद ख़ातिम का काम ईरान में नए शीर्ष पर पहुँच गया। शीराज़, इस्फ़ाहान, गुलपायगान तथा तेहरान वर्तमान काल में ख़ातिमकारी के मुख्य केंद्र हैं।

## चित्र-सूची

क्रम संख्या	पृष्ठ संख्या
1. ईरान का पहाड़ी क्षेत्र	1
2. कवोरि-लूत	2
3. हरमुज दीप	3
4. पासारगाद (कोरुश का समाधि स्थल)	10
5. तख्ते-जमशीद, सर्वराष्ट्र द्वार	11
6. मैदाने-नक्शे जहान, काखे-आली क्रापू (इस्फ़ाहान)	24
7. मुजाहिदीने-इंकलाब	27
8. शाह के विरुद्ध प्रदर्शन	28
9. मिट्टी निर्मित मानवाकृति, ईलामी काल (300 वर्ष ई.पू.)	39
10. देसी जलपान-गृह (क्रुवे खाने-ए-मुन्नती)	43
11. क्रवाइली परिवार में विवाहोत्सव पर स्त्रियों की पारंपरिक वेशभूषा (आवयाने, काशान)	44
12. क्रवाइली परिवार	45
13. परंपरागत वेशभूषा में शीराज़ी लड़की	45
14. ज़ीगुरात, चगाज़बील	48
15. दुकाने-दाउद (सरे-पुले ज़हाब)	49
16. तख्ते-जमशीद में भारतीय दूतों का आगमन (हिख़ामंशी काल—चौथी सदी ई.पू.)	54
17. नक्शे-रुस्तम	55
18. मशहद स्थित इमाम रिज़ा(अ) का रोज़ा	58
19. सुलतान महमूद ग़ज़नवी अन्य साहित्यकारों के साथ (फ़िरदौसी कृत शाहनामे की पांडुलिपि का एक पृष्ठ)	64
20. कूफी लेखन शैली	84
21. नस्तालीक़ लेखन शैली	85
22. तज़हीबकारी (स्वर्णलेपन)	88
23. तर्शर (चित्र अलंकरण)	89
24. क़ाली शूईयान (पारंपरिक शोक नाट्य शैली), इरदहाल, काशान	96
25. नुमाइशे-ताज़िया	101
26. आधुनिक नाट्य शैली	108

27.	ताक़े-बुस्तान, सासानी कालीन संगीत वादक स्त्रियाँ	110
28.	संगीतकार बाग़वुद तथा ऊद, नै एवं दफ़ बजाते हुए अन्य वादक	111
29.	तार एवं सेहतार	113
30.	कामांचा	114
31.	सीरस्तान का क़वाइली कीचक वादक	114
32.	ज़ावुल, सीरस्तान के वादक	115
33.	ऑर्गेस्ट्रा	116
34.	काशान स्थित आगा वुजुर्ग द्वारा निर्मित मस्जिद एवं मदरसा	118
35.	तेहरान स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय (मूजे-ए-मिल्ली)	126
36.	इस्फ़ाहान स्थित काख़े-चहल स्तून	128
37.	पुले-खाजू (इस्फ़ाहान)	129
38.	आये-अली (जलक्रीड़ा स्थल)	130
39.	फ़िरदोसी का मक़बरा	131
40.	हाफ़िज़ शीराज़ी का मक़बरा	132
41.	मशहद स्थित इमाम रिज़ा(अ) का रोज़ा	133
42.	शीराज़ स्थित चहल चिराग़	134
43.	तबरेज़ का ऐतिहासिक बाज़ार	135
44.	स्वर्ण एवं रजत प्रतिमाएँ, सूसा (1300-1200 वर्ष ई.पू.)	136
45.	क़ालीन युनते हुए कहगीलूए की क़वाइली स्त्री	137
46.	क़श्काई क़बीले में क़ालीन उत्पादन	138
47.	शीराज़ स्थित सराय मुशोर में क़ालीन विक्रेता	139
48.	धातु-पात्र पर क़लमकारी का एक नमूना	141
49.	चीनी-पात्रों पर मलीलेकारी	142
50.	तंगे-चरग़ान, सासानी कालीन अश्वारोही दल	143
51.	तंगे-चरग़ान, आहूरमज़दा का पाषाण चित्र (सासानी कालीन)	144
52.	तरुते-जमशीद स्थित काख़े हदीयश के पूर्वी द्वार की सीढ़ियाँ	149
53.	सुलतानिया स्थित अलजायतू का मक़बरा	151
54.	जामा मस्जिद यज़्द	152
55.	शेख़ लुत्फ़ुल्लाह मस्जिद का मुख्य द्वार—इस्फ़ाहान	153
56.	काज़ार कालीन छत की काशीकारी का एक नमूना, शीराज़	154
57.	काशीकारी का अनुपम उदाहरण, वकील मस्जिद, शीराज़	155
58.	हुमायूँ एवं शाह तेहमासब (दीवार चित्रकारी), काख़े-चहल स्तून, इस्फ़ाहान	156

# ایران

## آیینہ تمدن و فرهنگ

ترجمہ و تلخیص کتاب سیمای فرهنگی ایران

ترجمہ و ویرایش :

دکتر چندر شیکھر

مدیر ترویج



انتشارات : راینی فرهنگی سفارت جمهوری اسلامی ایران

۱۸ ، تلک مارگ، دہلی نو - ہند

E - mail : [ichdelhi@iranhouseindia.com](mailto:ichdelhi@iranhouseindia.com)

[www.iranhouseindia.com](http://www.iranhouseindia.com)

و



وانی پراکاشن

۲۱ - A - دریانگج ، دہلی نو ۱۱۰۰۰۲

تلفن : ۳۲۷۵۷۱۰ - ۳۲۷۳۱۶۷

E - mail : [vani-prakashan@yahoo.com](mailto:vani-prakashan@yahoo.com)

[vani-prakashan@manbraonline.com](http://vani-prakashan@manbraonline.com)

چاپ : سال ۱۳۸۱

# ایران

آئینه تمدن و فرهنگ

ترجمہ و ویرایش :

دکتر چندر شیکھر

مدوکر تیواری

رایزنی فرهنگی سفارت جمهوری اسلامی ایران

۱۸، تلک مارگ، دہلی نو - ہند

و

وانی پرکاشن

۲۱ - A - دریا گنج، دہلی نو ۱۱۰۰۰۲

۱۳۸۱